तुलसी-संग्रह

सम्पादक
डॉ० माताप्रसाद गुप्त

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

तुलसी-संग्रह

सम्पादक

डॉ० माताप्रसाद गुप्त, एम० ए०, डी० लिट्०

रीडर, प्रयाग विश्वविद्यालय





१८८१ शक

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

चतुर्थ संस्करण—३१००
मूल्य : १.२५ नये पैसे

मुद्रक—सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

प्रकाशकीय

गोस्वामी तुलसीदास जी का नाम हिन्दी भाषा-भाषी जनता के हृदय में चिर अंकित है। उन्होंने अपनी सरस, मधुर तथा लोकोपकारिणी वाणी से अपने आराध्य श्री रामचन्द्र के गुणों का जो वर्णन किया है वही हिन्दी साहित्य की अमर विभूति वन गया है। ऐसा ही कोई हिन्दीभाषी व्यक्ति होगा जो श्रद्धा के साथ गोस्वामी तुलसीदास के नाम को न स्मरण करता हो।

उन्हीं गोस्वामी तुलसीदास जी की अमर विभूतियों—रामचरितमानस, गीतावली, कवितावली, विनय-पत्रिका तथा दोहावली से सुपाठ्य सामग्री लेकर इस संग्रह को प्रस्तुत किया गया है। इसके सम्पादक डॉक्टर माताप्रसाद गुप्त गोस्वामी जी के साहित्य के विशेषज्ञ और मर्मज्ञ विद्वान् हैं। इस संग्रह में उपर्युक्त ग्रन्थरत्नों के आवश्यक अंशों का मूल पाठ देकर अंत में उन्होंने कठिन शब्दों और स्थलों का अर्थ स्पष्ट किया है तथा प्रारंभ में महाकवि के जीवन और कृतियों का यथेष्ट परिचय देते हुए सम्वन्धित अनेक प्रश्नों पर विवेचनात्मक प्रकाश डाला है इसलिए यह संग्रह तुलसी साहित्य के सभी श्रेणी के विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी वन गया है। हमें आशा है कि विशारद के विद्यार्थी तथा अन्य हिन्दी-प्रेमी इस संग्रह से विशेष लाभ अवश्य उठायेंगे।

मकर संक्रान्ति

संवत् २०१० —साहित्य मंत्री

विषय-सूची

भूमिका

१. तुलसीदास—जीवन और कृतियाँ

तुलसीदास का जन्म वस्तुतः कब हुआ यह अभी तक विवाद का विषय है। कुछ लोग सं० १५५४ वि० को उनका जन्मकाल मानते हैं, किंतु यह अधिक संभव नहीं ज्ञात होता। कुछ अन्य लोग सं० १५८९ को उनका जन्मकाल मानते हैं। कदाचित् इसी के लगभग उनका जन्म हुआ होगा।

तुलसीदास किस स्थान पर पैदा हुए थे, यह भी उनके जन्मकाल की ही तरह विवाद का विषय है। कुछ लोग हस्तिनापुर, कुछ राजापुर, कुछ तारी और कुछ लोग सोरों को उनकी जन्मभूमि मानते हैं, किन्तु इस विषय में प्राप्त प्रमाणों के आधार पर अभी इतना ही कहा जा सकता है कि राजापुर में उनके जन्म की संभावना अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक है।

तुलसीदास ब्राह्मण कुल में उत्पन्न थे, इतना निश्चित है। यद्यपि तुलसीदास हिन्दू-समाज के सबसे उच्च वर्ण में उत्पन्न हुए थे, किन्तु उन्हें इसका अभिमान बिलकुल नहीं था। यही कारण है कि उन्होंने कहीं भी अपने ब्राह्मण होने का दावा नहीं किया है। वह जिस कुल में उत्पन्न हुए थे चाहे वह धनाभाव के कारण समाज में विशेष सम्मानित न रहा हो, किन्तु वह निश्चय ही एक उच्च ब्राह्मण कुल था और उसकी संस्कृति कवि की नस-नस में व्याप्त थी। ब्राह्मणों में किस विशेष समुदाय अथवा उपजाति में उनका जन्म हुआ था, यह अभी अनिश्चित है।

जन्म के अनन्तर तुलसीदास को पेट-पूर्ति के लिए दर-दर ठोकर खानी पड़ी थी, इसका उल्लेख उन्होंने बहुत ही स्पष्ट ढंग पर 'कवितावली' के अनेक छन्दों में किया है। सम्भवतः उनके जन्म के थोड़े ही दिनों पीछे उनके माता-पिता का देहान्त हो गया था।

तुलसीदास की यह दशा सम्भवतः उस समय तक बनी रही जब तक वे किसी रामोपासक सम्प्रदाय के साधुओं के सम्पर्क में नहीं आ गये। साधुओं के सम्पर्क में आ जाने के बाद उन्हें पेट के लिए अधिक चिन्ता न रही। इस सुयोग से उन्होंने पूरा लाभ उठाया। देशाटन से उन्हें अनुभव तो प्राप्त हुआ ही, सम्भवतः विद्याभ्यास की भी उन्हें इसी सत्संग के कारण स्फूर्ति हुई।

रामोपासक सम्प्रदायों में आज भी हनुमान की उपासना एक बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इसलिए साधुओं के सम्पर्क में आने पर रामोपासना के साथ उन्होंने हनुमान की उपासना भी अपनी छोटी अवस्था ही में प्रारम्भ की थी और हनुमान को वे अपना सहायक जीवन के अन्त तक मानते रहे।

तुलसीदास के गुरु कौन थे, यह भी एक विवादपूर्ण विषय है। कुछ लोग किन्हीं नरहरिदास को उनका गुरु होना मानते हैं, किन्तु इसका आधार 'मानस' के बाल-काण्ड का एक सोरठा मात्र है। उस सोरठे का अर्थ अन्य प्रकार से अधिक संगत रूप से लगता है जिससे यह कहना ठीक नहीं हो सकता कि वह दोहा नरहरिदास को गुरु मानने के लिए पर्याप्त प्रमाण है।

अपने गुरु से तुलसीदास ने किसी शूकर क्षेत्र में राम-कथा सुनी थी। शूकर-क्षेत्र इस देश में एक से अधिक हैं, इसलिए यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह शूकरक्षेत्र कौन-सा था। यह कथा पहले-पहले उन्होंने जब अपने गुरु से सुनी थी, उस समय वे बहुत अपरिपक्व अवस्था के थे। किन्तु उन्होंने 'मानस' में लिखा है कि यही कथा उन्होंने फिर कई बार अपने गुरु से सुनी जिससे उनकी समझ में वह आ गई। इससे यह स्पष्ट है कि गुरु का साथ उन्हें कई वर्षों तक लगातार रहा।

उनके गुरु रामोपासक थे यह निश्चित है। उनका स्थान कहाँ था, यह कहना भी सरल नहीं है। शूकरक्षेत्र में तुलसीदास ने उनसे कथा सुनी, इतने मात्र से यह नहीं कहा जा सकता कि शूकरक्षेत्र उनके गुरु का निवासस्थान था। उनके गुरु विद्वान् थे। उस समय तक रामकथा मुख्यतः संस्कृत में थी, हिन्दी प्रदेश की किसी प्रचलित जन-भाषा में उसका अनुवाद नहीं हुआ था और तुलसीदास के गुरु राम-कथा कहा करते थे, इससे यह स्पष्ट है कि संस्कृत का उन्हें यथेष्ट ज्ञान था। तुलसीदास ने अपने संस्कृत-पठन का प्रारंभ भी सम्भवतः इन्हीं से किया होगा।

पूर्ण युवावस्था प्राप्त करने पर तुलसीदास ने गार्हस्थ्य में प्रवेश किया था, ऐसा ज्ञात होता है। किन्तु गार्हस्थ्य का आकर्षण उनके बढ़ते हुए रामानुराग में बाधक न हो सका और एक दिन वे कदाचित् स्त्री के किसी व्यंग से व्यथित होकर घर से निकल पड़े।

गृह-त्याग के अनन्तर सम्भवतः वे सीधे काशी आये। काशी उस समय हिन्दू संस्कृति का सबसे बड़ा केन्द्र था, जैसा वह आज भी है, और इसी कारण तुलसीदास आजीवन काशी में ही रहे और उनका देहान्त भी वहीं हुआ। यहाँ पर उन्हें अध्ययन का विशेष सुयोग मिला। 'नानापुराण निगमागम' आदि के अध्ययन से उनकी प्रतिभा को विकास का मार्ग मिल गया। राम-कथा को भाषा में कहने की उनकी पुरानी प्रतिज्ञा थी। ये साधन उसकी पूर्ति में सहायक हुए।

भली-भाँति प्रौढ़ता प्राप्त करने पर तुलसीदास सं० १६३१, या कुछ ही पूर्व, काशी से अयोध्या गये, और यहीं पर उन्होंने अपने विश्व-विश्रुत ग्रन्थ 'रामचरित-मानस' का प्रणयन प्रारम्भ किया। 'रामचरित मानस' के कुछ अंश अयोध्या में रचने के अनन्तर वे काशी चले आये और संभवतः यहीं उन्होंने उसे समाप्त किया। 'राम-चरित मानस' से विशाल और पाण्डित्य पूर्ण ग्रन्थ की रचना में तुलसीदास को कई वर्ष लग गये होंगे और उसके अनन्तर उन्होंने उसे कई बार दुहराया होगा और उसमें संशोधन किया होगा।

काशी में उनका निवास पहले प्रह्लाद घाट पर था। प्रह्लाद घाट पर एक गंगाराम ज्योतिषी रहा करते थे। काशी आने पर उनसे तुलसीदास जी की मित्रता हो गई थी, इसलिए वे वहीं रहने लगे थे। कहा जाता है कि इन्हीं गंगाराम के लिए उन्होंने अपने एक ग्रन्थ 'रामाज्ञा प्रश्न' की रचना की थी। उसके अनन्तर कुछ दिनों तक वे एकाध स्थान पर और रहे, फिर असी घाट पर चले आये। असी घाट पर उनके मित्र टोडर का स्थान था। यहीं असी घाट पर वे अपने शेष जीवन काल भर रहे और, जैसा प्रसिद्ध है, असी घाट पर ही उनका देहान्त भी हुआ।

टोडर से गोस्वामी जी की बड़ी आत्मीयता थी। सं० १६६९ में टोडर का देहान्त हो गया। देहान्त के अनन्तर उनके उत्तराधिकारियों में उनकी संपत्ति के लिये जब झगड़ा हुआ तो उसका निपटारा गोस्वामी जी ने किया। यह निपटारा

एक पंचायतनामे के द्वारा किया गया था। गोस्वामी जी ने केवल पंचायतनामे के सिरे पर एक श्लोक तथा दोहे लिखे हैं। पंचायतनामा टोडर के उत्तराधिकारियों के पास था, कुछ वर्ष हुए उसे उन्होंने काशीराज को दे दिया। इसलिए पंचायतनामा अब काशिराज के संग्रहालय में है।

काशी में तुलसीदास का सम्मान निरन्तर बढ़ता गया। 'रामचरित मानस' की रचना के अनन्तर यह स्वाभाविक भी था। नवाब अब्दुर्रहीम खानखाना से गोस्वामी जी की मैत्री प्रसिद्ध ही है। कहा जाता है कि राजा मानसिंह भी गोस्वामी जी से मिलने एकाध बार काशी आये थे। यह भी कहा जाता है कि गोस्वामी जी को दिल्ली के सम्राट् ने भी निमंत्रित किया था, यद्यपि यह कथन प्रामाणिक नहीं ज्ञात होता। इतना तो स्वयं तुलसीदास ने भी लिखा है कि 'जो तुलसीदास पहले टुकड़े माँगता था उसी के चरणों की पूजा राजा लोग करते हैं, यह कुछ आश्चर्य नहीं।' और एक स्थान में 'कवितावली' में उन्होंने लिखा है कि 'तुलसीदास को लोग महामुनि की तरह मानते हैं।' इन कथनों में कोई अत्युक्ति नहीं है।

इस सम्मान-वृद्धि से दूसरी ओर ईर्षा-वृद्धि भी होने लगी। पहले लोगों ने कुछ बुरा-भला कहा जिसका उत्तर तुलसीदास ने दिया। इसके बाद मामला कुछ और बढ़ा। उन्हें तरह-तरह से कष्ट पहुँचाया जाने लगा। अन्त में एकाध बार उनके विरोधियों ने उन्हें कुछ शारीरिक चोटें भी पहुँचाईं। इसका उत्तर वे विचारे क्या दे सकते थे। उन्होंने शिव से इसकी शिकायत की, फिर हनुमान से की, और अन्त में राम से की। इन शिकायतों से उनका दुःख दूर हुआ, ऐसा ज्ञात नहीं होता। अपने इन कष्टों की ओर उन्होंने 'कवितावली' और 'विनय पत्रिका' में कई स्थलों पर स्पष्ट संकेत किया है। किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि विरोधी दल अन्त में स्वतः हार मानकर बैठ गया।

सम्राट अकबर के देहावसान (सं० १६६२) के अनन्तर काशी में उत्पातों का प्रारम्भ हुआ। उस समय शासन सूत्र शिथिल और देश भर में इसी प्रकार अशान्ति थी। यह उत्पात कई वर्षों तक बना रहा। काशी में रहने के कारण और शिव के भी उपासक होने के कारण तुलसीदास ने इसका कारण शिव का कुपित होना समझा। इसलिए उन्होंने 'कवितावली' तथा 'दोहावली' में इस उत्पात की शांति के लिए

प्रार्थना की है। सं० १६६९ और सं० १६७१ के बीच यह उत्पात और भी बढ़ गया था। उस समय शनि मीन राशि पर थे। तुलसीदास ने इसलिए मीन के शनि को ही इस उत्पात की वृद्धि का कारण कहा है। यह उत्पात बहुत दिनों तक बना रहा, पर अन्त में स्वत: शान्त हो गया।

इस उत्पात के शान्त होने पर काशी में महामारी का प्रकोप हुआ। नित्य सैकड़ों मनुष्य मरते थे। यह देखकर तुलसीदास को बड़ी पीड़ा पहुँचती थी। उनका विश्वास था कि महामारी भी माता पार्वती का कोई स्वरूप है, इसलिए महामारी की स्तुति उन्होंने 'कवितावली' के अनेक छन्दों में की है। अन्त में महामारी भी शान्त हो गयी।

महामारी के कुछ ही आगे या पीछे उनकी एक बाँह में शूल आरम्भ हुआ। पहले तो वह साधारण था, किन्तु फिर वह बढ़ता ही गया। कुछ समय और बीतने पर वह शूल समस्त शरीर में फैल गया। इसकी शान्ति के लिए गोस्वामी जी ने अनेक उपाय किये, किन्तु वे सभी व्यर्थ गये। फिर उन्होंने हनुमान से इसकी शान्ति के लिए प्रार्थना की, फिर शिव से और राम से। इन प्रार्थनाओं का क्या परिणाम हुआ, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। ऐसा प्रसिद्ध है कि इस पीड़ा के थोड़े ही पीछे सं० १६८० में उनका शरीरान्त हो गया।

तुलसीदास के रचे हुए ग्रन्थ अनेक कहे जाते हैं, किन्तु निम्नलिखित ग्रन्थों को ही निश्चयपूर्वक उनका रचा हुआ माना जा सकता है—रामललानहछू, जानकी मंगल, रामाज्ञाप्रश्न, रामचरित मानस, पार्वतीमंगल, सतसई, गीतावली, कृष्ण गीतावली, विनय-पत्रिका, बरवै, दोहावली, कवितावली और हनुमान-बाहुक। इन ग्रंथों में से अधिकतर बहुत ही उत्कृष्ट काव्य-ग्रन्थ हैं। किन्तु 'रामचरित मानस', 'कवितावली', 'गीतावली', 'विनय पत्रिका' और 'दोहावली हिन्दी-साहित्य के अद्वितीय रत्न हैं, और इसमें सन्देह नहीं कि इनके कारण और सबसे अधिक 'रामचरित मानस' के कारण तुलसीदास का नाम संसार-साहित्य में अमर रहेगा।

२. तुलसीदास और रामकथा

रामकथा भारतीय संस्कृति का निकटतम परिचय है। हमारी संस्कृति में

आदि काल से सत्य, अहिंसा, धैर्य, क्षमा, अनासक्ति, इन्द्रिय-निग्रह, शुचिता, निष्कपटता, त्याग, निर्वैरता, उदारता आदि के जो तत्त्व प्रमुख रहे हैं, जिनके कारण ही हमारी संस्कृति संसार की समस्त संस्कृतियों में सर्वोपरि रही है, उन सबका जैसा समाहार रामकथा में दिखाई पड़ता है, वैसा अन्य किसी कथा में नहीं। आर्यावर्त के वाहर भी प्राचीन काल से जो रामकथा का प्रचार रहा है, वह हमारी इसी दिव्य संस्कृति की विजय का प्रतीक है।

तुलसीदास की विशेषता यह है कि उन्होंने भारतीय संस्कृति के इन्हीं तत्त्वों को पूर्ण रूप से आत्मसात् करके अपनी रामकथा को और भी उज्ज्वल वनाया है। उनकी सवसे वड़ी मौलिकता, और उनका सवसे वड़ा योग इसी वात में है।

तुलसीदास के उपर्युक्त प्रकार के योग को समझने के लिए सवसे अधिक आवश्यकता उनके चरित्र-चित्रण की सामान्य प्रवृत्तियों को समझने की है। तुलसीदास के पूर्व राम-कथा के चरित्रों का सवसे अधिक विकास 'वाल्मीकीय' और 'अध्यात्म' रामायणों में दिखाई पड़ता है। इन रामायणों में कथा के आदर्श पात्रों का चित्रण अत्यन्त समीचीन ढंग पर हुआ है। फिर भी कहीं-कहीं कुछ वातें उक्त चरित्रों में ऐसी मिलती हैं, जो भारतीय आदर्शों के अनुकूल नहीं पड़तीं। नीचे 'अध्यात्म रामायण' के कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

(१) 'अध्यात्म रामायण' में असत्य स्पर्श से वचने और फिर भी राम को रोक रखने के लिए दशरथ कहते हैं, "हे राम, तुम मुझ स्त्रीपरवश, भ्रान्तचित्त, कुमार्गगामी, पापात्मा को वाँधकर राज्य ले लो। इससे तुम्हें कोई पाप न लगेगा और ऐसा होने से मुझे भी असत्य स्पर्श न करेगा।" (२.३.६९–७०)

(२) इसी प्रकरण में लक्ष्मण राम से कहते हैं, "मैं उन्मत्त भ्रान्त-चित्त, और कैकेयी के वशवर्त्ती राजा दशरथ को वाँधकर भरत को उनके सहायक मामा आदि सहित मार डालूंगा, और अभिषेक में विघ्न उपस्थित करनेवालों का हाथ में धनुष-वाण लेकर प्राणान्त कर डालूंगा।" (२.४.१६–१७)

(३) भरत वसिष्ठ से कहते हैं, "मैं अपनी नाममात्र की माता कैकेयी का तत्काल वध कर डालता, यदि मुझे यह भय न होता कि राम मातृ-वध के लिए मुझे क्षमा न करेंगे।" (२.८.७–८)

(४) कौशल्या राम से कहती हैं, "हे राम! जिस प्रकार पिता तुम्हारे गुरु हैं, उसी प्रकार मैं भी तो उनसे अधिक तुम्हारी गुरु हूँ! यदि पिता ने तुमसे वन जाने के लिए कहा है, तो मैं तुम्हें रोकती हूँ। यदि तुम मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर वन चले जाओगे तो मैं अपने जीवन का अन्त कर यमपुर को चली जाऊँगी।" (२.४.१२–१३)

(५) लक्ष्मण राम से कहते हैं, "हे राम! अब मैं आपकी सेवा करने के लिए आपके पीछे-पीछे चलूंगा, आप इसके लिए आज्ञा दीजिए। हे प्रभो! आप मुझ पर कृपा कीजिए, नहीं तो मैं प्राण छोड़ दूंगा।" (२.४.५१–५२)

(६) सीता राम से कहती हैं, "मैं आपकी पूर्णतया सहायिका होकर अवश्य आपके साथ चलूंगी। यदि आप मुझे छोड़कर चले जायँगे, तो मैं अभी आपके सामने ही अपने प्राण छोड़ दूंगी।" (८.४.७९)

(७) गुह निषाद राम से कहता है, "हे राजेन्द्र! मैं भी आपके साथ ही चलूंगा। आप मुझे आज्ञा दीजिए, नहीं तो मैं प्राण छोड़ दूंगा।" (२.६.२४)

(८) भरत कैकेयी से कहते हैं, "अरी पापे! तेरे गर्भ से उत्पन्न होने के कारण अब तो मैं भी प्रत्यक्ष महापापी हूं। मैं या तो अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा, या विष खा लूंगा, अथवा खड्ग से आत्मघात करके यमलोक को चला जाऊंगा।" (२.७.८१)

(९) भरत राम से कहते हैं, "हे सुव्रत! मुझे आज्ञा दीजिए, जिससे मैं भी वन में आकर लक्ष्मण के समान ही आपकी सेवा करूं; नहीं तो मैं अन्न-जल छोड़कर इस शरीर को त्याग दूंगा।" अपना ऐसा निश्चय प्रकट कर और मन में भी यही ठानकर वे धूप में कुश बिछाकर पूर्व की ओर मुँह करके बैठ जाते हैं। (२.९.३९)

(१०) पुनः भरत राम से कहते हैं, "हे राम! यदि चौदह वर्ष के व्यतीत होने पर आप पहले ही दिन अयोध्या न पहुँचेंगे, तो मैं महान् अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा।" (२.७.५२)

(११) राम को विपत्ति में समझकर सीता लक्ष्मण से कहती हैं, "हे लक्ष्मण! क्या तू अपने भाई को विपत्ति में पड़ा देखना चाहता है? अरे दुर्बुद्धि! ज्ञात होता है कि तुझे राम का नाश चाहने वाले भरत ने ही भेजा है। क्या तू राम के नष्ट हो

जाने पर मुझे ले जाने के लिए ही आया है? किंतु तू मुझे पा न सकेगा। देख मैं अभी प्राण त्याग किये देती हूँ।" (३.७.३२–३३)

वाल्मीकीय 'रामायण' में भी इन-इन प्रसंगों में कथा के उपर्युक्त पात्रों ने प्रायः इसी प्रकार वाक्य कहे हैं। 'अध्यात्म रामायण' से अन्तर प्रायः शाब्दिक ही है, इसलिए वाल्मीकीय 'रामायण' से उद्धरण देना अनावश्यक होगा। इन प्रसंगों में 'रामचरित मानस' के पात्र किस प्रकार का आचरण करते हैं, यह अवश्य दर्शनीय है।

(१) 'मानस' में राम को रोकने के लिए दशरथ जो कुछ करते हैं, वह इस प्रकार है :—

रामहिं चितइ रहेउ नरनाहू। चला विलोचन बारि प्रवाहू।
सोक बिवस कछु कहइ न पारा। हृदय लगावत बारहिं बारा।
बिधिहि मनाव राउ मन माहीं। जेहि रघुनाथ न कानन जाहीं।
सुमिरि महेसहिं कहइ निहोरी। विनती सुनहु सदाशिव मोरी।
आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। आरति हरहु दीन जनु जानी।
तुम्ह प्रेरक सबके हृदयँ, सो मति रामहि देहु।
वचनु मोर तजि रहहिं घर, परिहरि सील सनेहु॥
अजसु होउ जग सुजस नसाऊ। नरक परौं बरु सुरपुर जाऊ।
सब दुख दुसह साहावउ मोहीं। लोचन ओट रामु जनि होहीं।
अस मन गुनइ राउ नहिं वोला। पीपर पात सरिस मन डोला।
(अयोध्या० ४५)

(२) 'मानस' के लक्ष्मण ने 'अध्यात्म' के लक्ष्मण की भाँति कोई बात सोची भी नहीं है; वे तो केवल इस बात के लिए चिंतित हैं कि कहीं मुझे राम घर पर ही न छोड़ दें।

समाचार जब लछिमन पाए। व्याकुल विलष वदन उठि धाए।
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा।
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीनु दीनु जनु जलतें काढ़े।
सोचु हृदय विधि का होनिहारा। सब सुख सुकृत सिरान हमारा।

मो कहुँ काह कहब रघुनाथा। रखिहहिं भवन की लैहहिं साथा।
(अयोध्या० ७०)

(३) 'मानस' में भरत इस प्रसंग में इस प्रकार कहते हैं :—

लखन राम सिय कहुँ बन दीन्हा। पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा।
लीन्ह विधवपन अपजसु आपू। दीन्हेउ प्रजहिं सोकु संतापू।
दीन्ह मोहि सुखु सुजसु सुराजू। कीन्ह कैकई सब कर काजू।
येहितें मोर काह अब नीका। तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका।
कैकै जठर जनमि जग माहीं। येहि मोहि कहँ कछु अनुचित नाहीं।
कैकै सुअन जोग जगु जोई। चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई।
(अयोध्या० १८१)

(४) 'मानस' की कौशल्या ने उक्त प्रसंग में जो किया है, वह इस प्रकार है :—

धरम सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छछूंदर केरी।
बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी। राम भरतु दोउ सुत सम जानी।
सरल सुभाउ राम महतारी। बोली बचन धीर धरि भारी।
तात जाऊँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयेसु सब धरमक टीका।

राज देन कहि दीन्ह बनु, मोहि न सो दुख लेस।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतहि, प्रजहिं प्रचंड कलेस।।

जौं केवल पितु आयेसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता।
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना।
(अयोध्या० ५६)

(५) 'मानस' के लक्ष्मण साथ चलने का आग्रह इस प्रकार करते हैं :—

उतर न आवत प्रेमबस, गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दास मैं स्वामी तुम्ह, तजहु त काह बसाइ।।

गुरु पितु मातु न जानऊँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू।
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी।

धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही।
मन क्रम वचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई।
(अयोध्या० ७८)

(६) उक्त प्रसंग में 'मानस' की सीता के वचन सुनिये :—

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरन सरोज निहारी।
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल स्रम हरिहौं।
पायँ पखारि बैठि तरु छाहीं। करिहौं बाउ मुदित मन माहीं।
स्रम कन सहित स्याम तनु देखें। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें।
सम महि तृन तरु पल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी।
बार बार मृदु मूरति जोही। लागिहि ताति बयारि न मोही।
को प्रभु सँग मोहि चितवनि हारा। सिंह बधुहि जिमि ससक सियारा।
मैं सुकुमारि नाथ वन जोगू। तुम्हहि उचित तपु मो कहँ भोगू।

ऐसेउ वचन कठोर सुनि, जौं न हृदय विलगान।
तौ प्रभु विषम वियोग दुख, सहिहहि पावँर प्रान ॥
(अयोध्या० ६७)

(७) गुह निषाद की विदाई के विषय में 'मानस' में केवल इतना आता है :—

तब रघुवीर अनेक विधि, सखहि सिखावनु दीन्ह।
राम रजायेसु सीस धरि, भवन गवनु तेहिं कीन्ह ॥
(अयोध्या० १११)

(८) 'मानस' के भरत अपनी माता से इस प्रकार कहते हैं :—

जौ पै कुरुचि रही अति तोही। जनमत काहे न मारे मोही।
पेड़ काटि तैं पालव सींचा। मीन जिअन हित बारि उलीचा।

हंसबंस दसरथु जनकु, राम लखन से भाइ।
जननी तूँ जननी भई, विधसन कछु न बसाइ ॥

जब तैं कुमति कुमत जिअँ ठएऊ। खंड खंड होइ हृदउ न गएऊ।
बर माँगत मन भइ नहिं पीरा। गरी न जीह मुँह परेउ न कीरा।

भूप प्रतीत तोरि किमि कीन्ही। मरन काल विधि मति हरि लीन्ही।
विधिहुँ न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी।
सरल सुसील धरमरत राऊ। सो किमि जानइ तीय सुभाऊ।
अस को जीव जंतु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नाहीं।
भे अति अहित राम तेउ तोही। को तूं अहसि सत्य कहु मोही।
जो हसि सो हसि मुहुं मसि लाई। आँखि ओट उठि वैठहि जाई।

राम विरोधी हृदय तें, प्रगट कीन्ह विधि मोहि।
मो समान को पातकी, वादि कहौं कछु तोहि।।

(अयोध्या० १३२)

(९) राम के वचनों पर 'मानस' के भरत की प्रतिक्रिया इस प्रकार की है :—

भरतहि भएउ परम संतोषू। सनमुख स्वामि विमुख दुख दोषू।
मुख प्रसन्न मन मिटा बिषादू। भा जनु गूंगेहि गिरा प्रसादू।
कीन्ह सप्रेम प्रनाम वहोरी। वोले पानि पंकरुह जोरी।
नाथ भएउ सुखु साथ गए को। लहेउँ लाहु जग जनमु भए को।
अव कृपाल जस आयेसु होई। करउँ सीस धरि सादर सोई।

(१०) 'मानस' में भरत राम से बिना कुछ कहे इस प्रकार विदा होते हैं :—

भेटत भुज भरि भाइ भरत सो। राम प्रेम रसु कहि न परत सो।
तन मन बचन उमग अनुरागा। धीर धुरंधर धीरजु त्यागा।
वरनत रघुवर भरत वियोगू। सुनि कठोर कवि जानिहि लोगू।

(अयोध्या० ३१८)

(११) 'मानस' में सीता के उस प्रकार के कोई वचन नहीं हैं; केवल 'मर्म वचनों' के वोलने का उल्लेख करके शेष को पाठक की कल्पना पर छोड़ दिया गया है।

मरम बचन जब सीता वोली। हरि प्रेरित लछिमन मन डोली।

(अरण्य० २२)

उपर्युक्त प्रसंगों में तुलसीदास के पात्रों ने जो कुछ कहा है, वह स्वतः अपनी टिप्पणी कर देता है, इसलिए और अधिक कहने की आवश्यकता कदाचित् नहीं है।

यहाँ पर केवल ऐसे प्रसंग दिये गये हैं जहाँ पर पूर्ववर्ती राम-साहित्य के पात्र प्राण लेने या देने तक पर उतारू हैं—और वे भी ऐसे पात्र जो कथा के आदर्श पात्रों में से हैं। 'मानस' के पात्र, कहना नहीं होगा कि इन समस्त स्थलों पर अपनी मर्यादाओं के अनुरूप संयम और विवेक से कार्य करते हुए दिखाई पड़ते हैं। यही वात अन्य प्रसंगों में भी दिखाई पड़ती है। गोस्वामी जी का योग फलतः इस दिशा में प्रकट है।

३. तुलसीदास के राम

इस चरित्र-विधान में गोस्वामी जी ने स्वभावतः सवसे उज्ज्वल आदर्श अपने आराध्य राम का रक्खा है। आदि कवि की रचना में भी राम का चित्र एक आदर्श मानव की भाँति चित्रित करने का यत्न किया गया है, उनमें चरित्र के वे सभी गुण हैं जिनको भारतीय संस्कृति में महत्त्व दिया गया है, केवल कुछ इने-गिने प्रसंगों में उनकी चेष्टाएँ ऐसी हैं जो उनके इस आदर्श चरित्र से किंचित् न मिलती हुई ज्ञात होती हैं। संभव है कि आदि कवि और उनके परवर्तियों ने इन चेष्टाओं को चरित्र की स्वाभाविकता को सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक समझा हो। किन्तु 'अध्यात्म रामायण' तक आते-आते उन प्रसंगों में भी राम के चरित्र को अन्यत्र की भाँति उच्चतम धरातल पर रख दिया गया है। कुछ उदाहरणों से यह वात स्पष्ट हो जायेगी।

(१) आदि कवि की रचना में वनवास का दुःसंवाद सुनाने जव राम कौशल्या के पास जाते हैं, भोजन के लिये रक्खे गये आसन को लक्ष्य करके वे कहते हैं, "देवि, आप जानती नहीं हैं; आपके लिए, सीता के लिए और लक्ष्मण के लिए वड़ा भय आया है, इससे आप लोग दुःखी होंगे। अव मैं दंडकारण्य में जा रहा हूँ, इस आसन से मुझे क्या करना है? अव मेरे लिए कुशासन चाहिए, यह आसन नहीं। निर्जन वन में चौदह वर्षों तक निवास करूँगा, मांस खाना छोड़ कर कंद-मूल-फल से जीविका चलाऊँगा। महाराज युवराज का पद भरत को देते हैं, और तपस्वी वेष में मुझे दंडकारण्य में भेजते हैं। मैं चौदह वर्ष तक वन में रहूँगा, जंगली वस्त्र धारण करूँगा और फल-मूल का आहार करूँगा।" (२.२०.२५–३१)

(२) इसी प्रकार, जब वे वनवास का दु:संवाद सुनाने सीता के पास जाते वे कहते हैं, "....इसी कारण मैं निर्जन वन में जाने के लिए प्रस्थित हुआ हूँ, और तुमसे मिलने के लिए यहाँ आया हूँ। तुम भरत के सामने मेरी प्रशंसा न करना। क्योंकि समृद्धिवान् लोग दूसरों की स्तुति नहीं सह सकते, इसलिए भरत के सामने तुम मेरे गुणों का वर्णन न करना। भरत के आने पर उनके सामने तुम मुझे श्रेष्ठ न बतलाना; ऐसा करना भरत का प्रतिकूलाचरण कहा जायगा, और अनुकूल रहकर ही भरत के पास रहना संभव हो सकता है। परंपरागत राज्य राजा ने भरत को ही दिया है; तुमको चाहिए कि तुम उसे प्रसन्न रक्खो, क्योंकि वह राजा है।" (२.२६.२४–२७)

(३) सीता-हरण के अनन्तर व्यथित राम लक्ष्मण से पूछते हैं, "लक्ष्मण, सीता के वियोग में मेरे मरने और तुम्हारे अयोध्या लौटने पर क्या कैकेई अपने मनोरथ पूर्ण होने से सुखी होगी?" (३.५८.७)

(४) रावण-वध के अनन्तर सीता की प्राप्ति पर राम उनसे कहते हैं, "अपने चरित्र की रक्षा क़रते हुए, अपवाद को दूर करते हुए तथा अपने प्रसिद्ध कुल का कलंक हटाते हुए यह युद्ध मैंने मित्रों के पराक्रम से जीता है। तुम्हारे चरित्र के विषय में संदेह का अवसर उपस्थित हुआ है, और तुम हमारे सामने खड़ी हो! आँखों के रोगी को जिस प्रकार दीपक बुरा लगता है, उसी प्रकार तुम भी मुझे बुरी लग रही हो। हे जनकपुत्रि! तुम जहाँ चाहो वहाँ जाओ, मैं तुम्हें अनुमति देता हूं। ये दसों दिशाएँ खुली पड़ी हैं, अब मुझे तुम्हारा कोई काम नहीं है। कौन कुलीन और तेजस्वी मनुष्य दूसरे के घर में रही हुई स्त्री का एक साथी मिलने के लोभ से ग्रहण कर सकता है। जिस अभिप्राय से मैंने तुम्हारा उद्धार किया है, वह मैंने पा लिया है। मेरा बदला चुक गया, मेरी आसक्ति अब तुममें नहीं है। तुम्हारी इच्छा जहाँ हो, वहाँ जाओ। भद्रे! बहुत सोच-विचार कर मैंने तुमसे यह कहा है; लक्ष्मण या भरत के पास तुम जा सकती हो; शत्रुघ्न, सुग्रीव या राक्षसराज विभीषण के पास तुम रहो; अथवा जहाँ तुम्हें समझ पड़े, वहाँ तुम रहो' (६.११५.१६.२३)। इन वचनों के उत्तर की भूमिका में राम से सीता ने ठीक ही कहा है, "वीर, मेरे लिए अयोग्य, और कानों के लिए दारुण, इस प्रकार के वचन आप मुझे क्यों सुना रहे

हैं? इस प्रकार के वचन तो प्राकृतजन (असभ्य लोग) प्राकृत स्त्रियों (असभ्य स्त्रियों) को कहा करते हैं।" (६.११६.५)

'अध्यात्म रामायण' में ऊपर के चार में से तीन कथन विलकुल नहीं हैं; और चौथे के स्थान पर इतना ही आया है, "भगवान राम ने कार्यार्थ निर्मित माया-सीता को देखकर उनसे बहुत-सी न कहने योग्य वातें कहीं" (६.१२.७५–७६)। गोस्वामी जी ने भी ठीक ऐसा ही किया है। समालोचकों ने आदि काव्य से 'राम चरित मानस' तक की कथा की यात्रा में 'अध्यात्म रामायण' के इस योग से आँख मूंद कर इस चरित्र-संशोधन का सारा श्रेय गोस्वामी जी को दिया है। यह अनुचित हुआ है।

अस्तु, गोस्वामी जी के सामने राम के दो रूप थे। इनमें से दूसरे ही रूप को गोस्वामी जी ने ग्रहण किया। उनके लिए राम एक आदर्श मानव मात्र नहीं थे; वे उनके आराध्य थे, वे ईश्वर थे, जो मानवीय लीला मात्र कर रहे थे; इसलिए राम के इस दूसरे रूप को ग्रहण करना उनके लिए स्वाभाविक ही था। किन्तु गोस्वामी जी ने 'अध्यात्म रामायण' से राम का वह रूप लेकर उसको विकसित भी किया है। उन्होंने ऐसे अनेक अन्यान्य प्रसंगों में भी राम के चरित्र में उन्हीं गुणों का समावेश किया है, जो 'अध्यात्म रामायण' में कुछ इने-गिने प्रसंगों में ही मिलते हैं। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

(१) अपने निवास-स्थान पर आये हुए गुरु वसिष्ठ का स्वागत राम कितने नम्रतापूर्वक नीचे लिखे शब्दों में करते हैं :—

गहे चरण सिय सहित बहोरी। बोले राम कमल कर जोरी।
सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगलमूल अमंगल दमनू।
तदपि उचित जन वोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ असि नीती।
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आज येहु गेहू।
आयेसु होइ सो करउँ गोसाईं। सेवक लहइ स्वामि सेवकाई।

(अयोध्या० ९)

(२) गुरु वसिष्ठ द्वारा अपने युवराज पद पर अभिषिक्त होने के आयोजन

की सूचना पाने पर गोस्वामी जी राम की प्रतिक्रिया का परिचय इस प्रकार देते हैं :—

गुरु सिख देइ राउ पहँ गयऊ। राम हृदयँ अस विसमय भयऊ।
जनमें एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई।
करनवेध उपवीत विवाहा। संग संग सब भएउ उछाहा।
विमल वंस येह अनुचित एकू। वंधु बिहाइ बड़ेहिं अभिषेकू।
प्रभु सप्रेम पछितान सुहाई। हरउ भरत मन कै कुटिलाई।
(अयोध्या० १०)

(३) गोस्वामी जी ने अपने राम के 'कोमल कुसुमहु चाहिं' स्वभाव का जो परिचय दिया है, उसका एक चित्र इस प्रकार है :—

सीय लखन जेहि विधि सुख लहहीं। सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं।
कहहिं पुरातन कथा कहानी। सुनहिं लखन सिय अति सुख मानी।
जब जब राम अवध सुधि करहीं। तब तब वारि विलोचन भरहीं।
सुमिरि मातु पितु परिजन भाई। भरत सनेह सील सेवकाई।
कृपासिंधु प्रभु होहिं दुखारी। धीरज धरहिं कुसमउ विचारी।
लखि सिय लखन विकल होइ जाहीं। जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं।
पिया बंधु गति लखि रघुनंदन। धीर कृपालु भगत उर चंदन।
लगे कहन कछु कथा पुनीता। सुनि सुख लहहिं राम अरु सीता।
(अयोध्या० १४१)

(४) जिस कैकेयी ने उन्हें उनसे अयोध्या का राज्य छीनकर चौदह वर्षों के लिये वन भेजा, उससे तुलसीदास के राम चित्रकूट में अपनी माता से भी पहले और कितने उदार चित्त के साथ मिलते हैं :—

देखी राम दुखित महतारी। जनु सुबेलि अवली हिम मारी।
प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभाय भगति मति भेई।
पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम विधि सिरधरि खोरी।
(अयोध्या० २२४)

राम के इस आचरण के स्वाभाविक परिणाम-स्वरूप गोस्वामी जी कैकेयी में घोर अनुपात इस प्रकार चित्रित करते हैं :—

लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछतानि अघाई।
अवनि जमहि जाँचत कैकेई। महि न बीचु विधि मीचु न देई।
(अयोध्या० २५२)

(५) सभी महान् चरित्रों के अनुरूप अन्यों के चरित्र की उदारता और महानता का कथन करते हुए गोस्वामी जी के राम किस प्रकार नहीं अघाते हैं! वसिष्ठ से वे कहते हैं :—

नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भएउ न भुवन भरत सम भाई।
जे-गुरुपद अम्वुज अनुरागी। ते लोकहुँ वेदहुँ वड़ भागी।
राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू।
लखि लघु वंधु वुद्धि सकुचाई। करत वदन पर भरत वड़ाई।
(अयोध्या० २५९)

(६) अपने राम में गोस्वामी जी ने कितनी सुन्दरता और स्वाभाविकता के साथ एक संकोचशील स्वभाव का चित्रण किया है, इसे चित्रकूट की अंतिम सभा की निम्नलिखित भूमिका में देखिए :—

भोर न्हाइ सव जुरा समाजू। भरत भूमिसुर तिरहुति राजू।
भल दिन आजु जानि मन माही। राम कृपालु कहत सकुचाहीं।
गुरु नृप भरत सभा अवलोकी। सकुचि राम फिर अवनि विलोकी।
सील सराहि सभा सव सोची। कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची।
(अयोध्या० ३१३)

(७) अपने राम में गोस्वामी जी शत्रु के प्रति भी अहिंसा का कितना अनुकरणीय विकास करते हैं, जव वे अंगद को रावण के पास भेजते हुए राम से कहलाते हैं :—

काज हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु वात कही सोई।
(लंका० १७)

(८) गोस्वामी जी के राम अपने शरणागत-रक्षण धर्म का सक्रिय प्रमाण विभीषण पर रावण-द्वारा शक्ति-प्रहार के अवसर पर अपने प्राणों को भी संकट में डालकर कितने सुन्दर ढंग पर देते हैं :—

आवत देखि सक्ति खर धारा। प्रनतारति हर विरिद सँभारा।
तुरत विभीषन पाछे मेला। सनमुख राम सहेउ सो सेला।
लागि सक्ति मुरछा कछु भई। प्रभु कृत खेल सुरन्ह विकलई।
(लंका० ९४)

इन अवतरणों से यह भी प्रकट हुआ होगा कि 'रामचरित मानस' राम के चित्रण में केवल वुद्धि का योग नहीं है, हृदय का भी योग है। यदि केवल वुद्धि का योग होता, तो अधिक से अधिक यह होता कि एक परिष्कार मात्र दिखाई पड़ता, किन्तु इतना ही नहीं है। सम्पूर्ण चरित्र को गोस्वामी जी ने अपने हृदय की स्निग्धता से सिंचित करके प्राय: एक नवीन रूप ही दे दिया है।

४. तुलसीदास की साधना का आदर्श

तुलसीदास के राम प्रेम का आदर्श चातक है। जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, 'रामचरित मानस' में भरत ने 'प्रियतम पद प्रेम' की जो याचना सुरसरि से की है, उसमें चातक ही उस प्रेम का आदर्श है; और स्वत: कवि ने अपने मन से 'राम नाम नव नेह मेह' के लिए हठपूर्वक 'पपीहा' वनने का आग्रह किया है। किन्तु सवसे अधिक इस प्रेम के आदर्श का स्पष्टीकरण और विस्तार उन्होंने 'दोहावली' में किया है। नीचे उसका परिचय दिया जाता है।

(१) तुलसीदास के चातक का अनुराग—एक परम भागवत की भाँति—सर्वथा एकांतिक है। वह घनश्याम को छोड़कर और किसी से याचना करना जानता ही नहीं है, घनश्याम चाहे उसकी पुकार सुने, चाहे न सुने :—

एक भरोसो एक वल, एक आस विस्वास।
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास॥
जौ घन बरसै समय सिर, जौ भरि जनम उदास।
तुलसी या चित चातकहि, तऊ तिहारी आस॥

तीनि लोक तिहुँ काल जस, चातक ही के माथ ?
तुलसी जासु न दीनता, सुनी दूसरे नाथ ।।

(२) वह दृढ़व्रत ऐसा है कि केवल स्वाती के जल को ग्रहण करता है; दूसरे जल को वह किसी प्रकार नहीं ग्रहण करता है। बाज ने उसे चंगुल में पकड़ लिया है; उस समय उसे चिंता केवल यही है कि मार डालने के अनन्तर उसको पृथ्वी के जल में पकाया जायगा :—

चरग चंगुगत चातकहि, नेम प्रेम की पीर ।
तुलसी परबस हाड़ परि, परिहैं पुहुमी नीर ।।

बधिक के लक्ष्य से विद्ध होकर चातक पुण्य-सलिला गंगा के जल में गिरता है किन्तु वहाँ भी अपनी चोंच को ऊपर की ओर उठाकर मरते हुए वह अपने व्रत की रक्षा करता है :—

बध्यो बधिक पर्‍यो पुन्य जल, उलटि उठाई चोंच ।
तुलसी चातक प्रेम पट, मरतहु लगी न खोंच ।।

अपने अंडों के छिलके पानी में गिरा हुआ देखकर चतुर चातक, अपने चंगुल से —चोंच से नहीं—उसे भी बाहर कर देता है :—

अंड फोरि कियो चेटुवा, तुष पर्‍यो नीर निहारि ।
गहि चंगुल चातक चतुर, डार्‍यो बाहर बारि ।।

प्राण त्याग करते समय वह अपने बच्चों को इस विषय में सावधान करता हुआ मरता है कि वे उसका तर्पण केवल बारिधर-धारा से करेंगे :—

तुलसी चातक देत सिख, सुतहि बारही बार ।
तात न तर्पन कीजिए, बिना बारिधर बारि ।।

जीते-जी तो उसने दूसरे का जल ग्रहण ही नहीं किया, मरते समय भी उसने अपनी संतानों से अपने शव का स्नान भागीरथी के जल में कराने से रोक दिया :—

जिअत न नाई नारि, चातक घन तजि दूसरहि ।
सुरसरिहू को बारि, मरत न माँगेउ अरघ जल ।।

(३) प्रेम वह केवल उस प्रेम की अतृप्ति के आनन्द के लिए करता है। तुलसीदास के अनुसार वह इसीलिए स्वाती का भी जल नहीं ग्रहण करता है कि उसकी प्रेम-तृषा शान्त हो जावेगी :—

चातक तुलसी के मते, स्वातिहु पिऐ न पानि ।
प्रेम तृषा वाढ़ति भली, घटै घटैगी आनि ।।
रटत रटत रसना लटी, तृषा सूखि गे अंग ।
तुलसी चातक प्रेम को, नित नूतन रुचि रंग ।।

वह याचना वारह महीने करता है, किन्तु ग्रहण केवल स्वाती का जल करता है—वह भी कदाचित् स्नेही मेघ का मन रखने के लिए ही :—

जाचै वारह मास, पिऐ पपीहा स्वातिजल ।
जान्यो तुलसीदास, जोगवत नेही मेह मन ।।

(४) वह एकांगी प्रेम मार्ग का अनुसरण करता है—वह इस वात की अपेक्षा नहीं करता कि उसका प्रिय उसके प्रेम को सफल करे :—

चढ़त न चातक चित कवहुँ, प्रिय पयोद के दोष ।
तुलसी प्रेम पयोधि की, ताते नाप न जोख ।।

उसका निष्ठुर प्रियतम उस पर पत्थर वरसावे, चाहे वज्र गिरावे, अथवा चाहे जो कुछ उसको अपने प्रेम पथ से विरत करने के लिए करे, किंतु वह इन वाधाओं के कारण उलटे अपने व्रत में और भी दृढ़ होता जाता है :—

वरसि परुष पाहन पयद, पंख करौ टुक टूक ।
तुलसी परी न चाहिए, चतुर चातकहि चूक ।।
उपल वरषि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर ।
चितव कि चातक मेघ तजि, कवहुँ दूसरी ओर ।।
पवि पाहन दामिनि गरज झरि झकोर खरि खीझि ।
रोष न प्रीतम दोष लखि, तुलसी रागहि रीझि ।।

(५) अपनी याचना की इस प्रकार की वृत्ति होते हुए भी चातक स्वाभिमान का परित्याग नहीं करता। वह उस मेघ के सामने भी सिर नहीं झुकाता, ऊपर चोंच किये हुए ही उसका जल ग्रहण करता है :—

मान राखिवो माँगिवो, पिय सों नित नव नेहु।
तुलसी तीनिउ तव फवैं, जौ चातक मत लेहु।।
तुलसी चातक ही फवें, मान राखिवो प्रेम।
बक्र बुंद लखि स्वाति हूँ, निदरि निवाहत नेम।।
नहिं जाचत नहीं संग्रही, सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी जाचकहिं, को वारिद बिन देइ।।

(६) चातक की याचना अपने लिए होती है, यह समझना भूल होगी वह तो केवल स्वाती का पानी पीता है, किन्तु याचना वह निरन्तर करता रहता है

तुलसी के मत चातकहि, केवल प्रेम पिआस।
पिअत स्वाति जल जान जग, जाचक बारह मास।।

वास्तव में वह याचना अपने लिए नहीं—जगत् के लिए करता है। मे संसार का उपकार करता है, इसलिए वह चातक का प्रेम-पात्र है!

तुलसी चातक माँगनो, एक सवै धन दानि।
देत जो भू भाजन भरत, लेत जो घूंटक पानि।।
जीव चराचर जहँ लगे, है सब को हित मेह।
तुलसी चातक मन बस्यो, घन सों सहज सनेह।।

चातक कितनी पूर्णता के साथ तुलसीदास की लोकमंगलमयी भक्ति का प्रतीक है! उसकी और विशेषताओं के लिए कल्पना करने में तुलसीदास के प्रतिस्पर्ध मिल जायेंगे, किन्तु कदाचित् इस अंतिम विशेषता के लिए चातक का स्मरण तुलसीदास ने ही किया है।

५. उपसंहार

ऊपर हमने देखा है कि तुलसीदास का जन्म एक निर्धन कुल में हुआ। माता-पिता से वियोग भी अल्पावस्था में ही हुआ। उदर-पूर्ति के लिए जीवन-संघर्ष का सामना उसी समय से करना पड़ा। किन्तु इससे जीवन का विस्तृत अनुभव प्राप्त करने का उन्हें एक अवसर मिला, जो सम्भव था कि अन्यथा न मिलता।

इसी समय वे राम-भक्तों के सम्पर्क में आये। अवस्था प्राप्त करने पर कदाचित् उन्होंने विवाह किया, किन्तु उनके पूर्वार्जित राम-भक्ति के संस्कार प्रवलतर सिद्ध हुए, और वे घर-बार छोड़कर अपनी जीवन-साधना के लिए निकल पड़े। उनकी राम-भक्ति ने एक रचनात्मक रूप धारण किया, और साहित्य को उन्होंने ऐसे रत्न प्रदान किये जिनकी आभा युगों तक क्षीण नहीं हो सकती।

उनके सामने एक विशाल और अत्यन्त सम्पन्न राम-साहित्य था। उसका अवगाहन करके उससे यथेष्ट सन्तोष नहीं हुआ, और उन्होंने अपने उस अन्त:करण के असन्तोष को दूर करने के लिए—स्वान्तः सुखाय—उस 'मानस' की रचना की, जिसने उन्हें अमर कर दिया।

कहने की आवश्यकता नहीं कि रामचरित भारतीय संस्कृति का सर्वोत्तम प्रतीक है। उनकी विशेषता इस बात में है कि उन्होंने भारतीय संस्कृति के तत्त्वों को पूर्ण रूप से आत्मसात् करके इस राम-चरित को उसका और भी पूर्ण प्रतीक बनाया है। और उनकी कला इस बात में है कि यह कार्य उन्होंने इतनी स्वाभाविकता के साथ सम्पन्न किया है कि इस विषय में अपने पूर्ववर्तियों से वे बीस ही हैं—कथा के चरित्रों की मूल प्रवृत्तियों को समझकर अपने चरित्रों के भवन उन्होंने धुर नींव से तैयार किये हैं, और उन्हें मानवता के उनके अपने ही मूल्यवान गुणों से अधिकाधिक सम्पन्न कर दिया है।

इतना ही नहीं, उन्होंने राम-भक्ति का जो आदर्श सम्मुख रक्खा है, वह भी उनके व्यक्तित्व की इन विशेषताओं से अनुरंजित हो उठा है। उनके जीवन में, उनकी रचनाओं के आध्यात्मिक आधार में, उनकी साधना में, और उनके प्रेम के आदर्श में—सर्वत्र लोकमंगल की कामना का वह दिव्य आलोक दिखाई पड़ता है जो सम्पूर्ण साम्प्रदायिकता से परे है।

अपने योग की इन्हीं विशेषताओं के कारण तुलसीदास ने हिन्दी साहित्य में ही नहीं, सम्पूर्ण राम-साहित्य में और उसके द्वारा भारतीय साहित्य में एक विशेष स्थान प्राप्त किया है।

तुलसी-संग्रह

रामचरितमानस

अयोध्याकांड

मंगल सगुन होहिं सब काहू। फरकहिं सुखद विलोचन बाहू ।।
भरतहिं सहित समाज उछाहू। मिलिहहिं रामु मिटिहि दुख दाहू ।।
करत मनोरथ जस जिअ जाकें। जाहिं सनेह सुरा सब छाके ।।
सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं। बिहवल बचन प्रेम बस बोलहिं ।।
राम सखा तेहिं समय देखावा। सैल सिरोमनि सहज सुहावा ।।
जासु समीप सरित पय तीरा। सीय समेत बसहिं दोउ बीरा ।।
देखि करहिं सब दंड प्रनामा। कहि जय जानकिजीवन रामा ।।
प्रेम मगन अस राज समाजू। जनु फिरि अवध चले रघुराजू ।।

दो०—भरत प्रेम तेहि समय जस, तस कहि सकइ न सेषु।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुखु, अहमम मलिन जनेषु ।।१।।

सकल सनेह सिथिल रघुबर कें। गए कोस दुइ दिनकर ढरकें ।।
जलु थलु देख बसे निसि बीतें। कीन्ह गवन रघुनाथ पिरीतें ।।
ऊहाँ रामु रजनी अवसेषा। जागे सीय सपन अस देखा ।।
सहित समाज भरत जनु आए। नाथ बियोग ताप तन ताए ।।
सकल मलिन मन दीन दुखारी। देखीं सासु आन अनुहारी ।।
सुनि सिय सपन भरे जल लोचन। भए सोच बस सोचबिमोचन ।।
लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई ।।
अस कहि बंधु समेत नहाने। पूजि पुरारि साधु सनमाने ।।

छं०—सनमानि सुर मुनि वंदि बैठे उतर दिसि देखत भए।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे विकल प्रभु आस्रम गए॥
तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित रहे।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे॥

सो०—सुनत सुमंगल बैन, मन प्रमोद तन पुलक भर।
सरद सरोरुह नैन, तुलसी भरे सनेह जल॥२॥

बहुरि सोचवस भे सियरवनू। कारन कवन भरत आगमनू॥
एक आइ अस कहा बहोरी। सेन संग चतुरंग न थोरी॥
सो सुनि रामहि भा अति सोचू। इत पितु बच उत बंधु संकोचू॥
भरत सुभाउ समुझि मन माहीं। प्रभु चित हित थिति पावत नाहीं॥
समाधान तब भा यह जाने। भरत कहे महुँ साधु सयाने॥
लखन लखेउ प्रभु हृदय खभारू। कहत समय सम नीति बिचारू॥
बिनु पूँछें कछु कहौं गोसाईं। सेवक समय न ढीठ ढिठाई॥
तुम्ह सर्वज्ञ सिरोमनि स्वामी। आपनि समुझि कहउ अनुगामी॥

दो०—नाथ सुहृद सुठि सरल चित, सील सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जिअ, जानिअ आपु समान॥३॥

बिषयी जीव पाई प्रभुताई। मूढ़ मोहबस होहिं जनाई॥
भरत नीति रत साधु सुजाना। प्रभु पद प्रेमु सकल जगु जाना॥
तेऊ आजु राजपदु पाई। चले धरम मरजाद मेटाई॥
कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी। जानि रामु बनवास एकाकी॥
करि कुमंत्रु मन साजि समाजू। आए करइ अकटंक राजू॥
कोटि प्रकार कलपि कुटलाई। आए दलु बटोरि दोउ भाई॥
जौं जिअ होति न कपट कुचाली। केहि सोहाति रथ बाजि-गजाली॥
भरतहि दोसु देइ को जाए। जग बौराइ राजपदु पाएँ॥

दो०—ससि गुर तिअ गामी, नहुष, चढ़ेउ भूमिसुर जान।
लोक बेद तें बिमुख भा अधम न बेन समान॥४॥

सहसबाहु सुरनाथ त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु रिन रंच न राखब काऊ॥
एक कीन्हि नहिं भरत भलाई। निदरे रामु जानि असहाई॥
समुझि परिहि सोउ आजु बिसेषी। समर सरोष राम मुखु पेखी॥
एतना कहत नीति रस भूला। रन रस बिटपु पुलक मिस फूला॥
प्रभु पद बंदि सीस रज राखी। बोले सत्य सहज बलु भाखी॥
अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहिं उपचरा न थोरा॥
कहँ लगि सहिअ रहिअ मनु मारें। नाथ साथ धनु हाथ हमारें॥

दो०—छत्र जाति रघुकुल जनमु, राम अनुज जगु जान।
लातहु मारें चढ़ति सिर, नीच को धूरि समान॥५॥

उठि कर जोरि रजायेसु माँगा। मनहुँ बीर रस सोवत जागा॥
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासनु सायकु हाथा॥
आजु राम सेवक जसु लेऊँ। भरतहि समर सिखावन देऊँ॥
राम निरादर कर फलु पाई। सोवहुँ समर सेज दोउ भाई॥
आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करौं रिस पाछिल आजू॥
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥
तैसेहिं भरतहि सेन समेता। सानुज निदरि निपातौं खेता॥
जौं सहाय कर संकरु आई। तौं मारौं रन राम दोहाई॥

दो०—अति सरोष माखे लखनु, लखि सुनि सपथ प्रवान।
सभय लोक सब लोकपति, चाहत भभरि भगान॥६॥

जगु भय मगन गगन भइ बानी। लखन बाहु बलु बिपुल बखानी॥
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकइ को जाननिहारा॥
अनुचित उचित काजु कछु होऊ। समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ॥
सहसा करि पाछें पछिताहीं। कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं॥
सुनि सुर बचन लखन सकुचाने। राम सीय सादर सनमाने॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सब तें कठिन राजमदु भाई॥

जो अँचवत नृप मातहिं तेई। नाहिन साधु सभा जेहिं सेई॥
सुनहु लखन भल भरत सरीसा। विधि प्रपंच महँ सुना न दीसा॥
दो०—भरतहि होइ न राजमदु, विधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ की काँजी सीकरनि, छीरसिंधु बिनसाइ॥७॥
तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई। गगनु मगन मकु मेघहि मिलई॥
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी। सहज छमा बरु छाड़इ छोनी॥
मसक फूंक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमदु भरतहि भाई॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥
सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता। मिलइ रचइ परपंचु विधाता॥
भरतु हंस रवि वंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा॥
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्हि उजिआरी॥
कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ। प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ॥
दो०—सुनि रघुबर बानी बिबुध, देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सों, प्रभु को कृपानिकेतु॥८॥
जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को॥
कवि कुल अगम भरत गुन गाथा। को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा॥
लखनु राम सिय सुनि सुर बानी। अति सुखु लहेउ न जाइ बखानी॥
इहाँ भरतु सब सहित सहाएँ। मंदाकिनी पुनीत नहाएँ॥
सरित समीप राखि सब लोगा। माँगि मातु गुर सचिव नियोगा॥
चले भरतु जहँ सिय रघुराई। साथ निषादनाथु लघु भाई॥
समुझि मातु करतब सकुचाहीं। करत कुतरक कोटि मन माहीं॥
राम लखनु सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ॥
दो०—मातु मतें महु मानि मोहिं, जो कछु करहिं सो थोर।
अघ अवगुन छमि आदरहिं, समुझि आपनी ओर॥९॥
जौं परिहरहिं मलिन मनु जानी। जौं सनमानहिं सेवकु मानी॥
मोरें सरन राम की पनहीं। रामु सुस्वामि दोसु सब जनहीं॥

जग जस भाजन चातक मीना। नेम प्रेम निजि निपुन नवीना ॥
अस मन गुनत चले मग जाता। सकुच सनेह सिथिल सब गाता ॥
फेरति मनहिं मातकृत खोरी। चलत भगति बल धीरज धोरी ॥
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ ॥
भरत दसा तेहि अवसर कैसी। जल प्रवाह जल अलि गति जैसी ॥
देखि भरत कर सोचु सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू ॥

दो०—लगे होन मंगल सगुन, सुनि गुनि कहत निषादु।
मिटहि सोच होइहि हरषु, पुनि परिनाम विषादु ॥१०॥

सेवक वचन सत्य सब जाने। आस्रम निकट जाइ निअराने ॥
भरत दीखि बन सैल समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू ॥
ईति भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिविध ताप पीड़ित ग्रह मारी ॥
जाइ सुराज सुदेस सुखारी। होई भरत गति तेहि अनुहारी ॥
राम वास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा ॥
सचिव बिरागु बिवेकु नरेसू। बिपिन सुहावन पावन देसू ॥
भट जम नियम, सैल रजधानी। सांति सुमति सुचि सुन्दर रानी ॥
सकल अंग संपन्न सुराऊ। रामचरन आस्रित चित चाऊ ॥

दो०—जीति मोहि महिपालु दल, सहित; बिवेक भुआलु।
करत अकंटक राज्य पुर, सुख संपदासु कालु ॥११॥

बन प्रदेस मुनि बास घनेरे। जनु पुर नगर गाउँगन खेरे ॥
बिपुल बिचित्र बिहँग मृग नाना। प्रजा समाजु न जाइ बखाना ॥
खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष वृष साजु सराहा ॥
बयरु बिहाइ चरहिं एक संगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा ॥
झरना झरहिं मत्तगज गाजहिं। मनहुँ निसान बिबिध बिधि बाजहिं ॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन। कूजत मंजु मराल मुदित मन ॥
अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा ॥
बेलि बिटप तृन सकल सफूला। सब समाजु मुद मंगल मूला ॥

दो०—राम सैल सोभा निरखि, भरत हृदयँ अति पेमु।
तापस तप फलु पाइ जिमि, सुखी सिराने नेमु ।।१२।।

तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई।।
नाथ देखिअहिं बिटप बिसाला। पाकरि जंबु रसाल तमाला।।
तिन्ह तरुवरन्ह मध्य वटु सोहा। मंजु बिसाल देखि मनु मोहा।।
नील सघन पल्लव फल लाला। अबिचल छाँह सुखद सब काला।।
मानहुँ तिमिर अरुनमय रासी। बिरची बिधि सकेलि सुषुमा सी।।
ये तरु सरित समीप गोसाईं। रघुवर परनकुटी जहँ छाईं।।
तुलसी तरुवर विविध सुहाए। कहुँ कहुँ सिय कहुँ लखन लगाए।।
वट छायाँ वेदिका बनाई। सिय निज पानि सरोज सुहाई।।

दो०—जहाँ बैठि मुनि गन सहित, नित सिय रामु सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब, आगम निगम पुरान ।।१३।।

सखा वचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन वारी।।
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई।।
हरषहिं निरख राम पद अंका। मानहुँ पारसु पाएउ रंका।।
रज सिर धरि हिय नयनन्हि लावहिं। रघुवर मिलन सरिस सुख पावहिं।।
देखि भरत गति अकथ अतीवा। प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा।।
सखहिं सनेह विवस मग भूला। कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला।।
निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेहु सराहन लागे।।
होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को।।

दो०—पेमु अमिअ मंदरु विरहु, भरत पयोधि गभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित, कृपासिन्धु रघुवीर ।।१४।।

सखा समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लखन सघन बन ओटा।।
भरत दीख प्रभु आस्रमु पावन। सकल सुमंगल सदनु सुहावन।।
करत प्रवेस मिटे दुख दावा। जनु जोगी परमारथु पावा।।
देखे भरत लखन प्रभु आगे। पूँछे बचन कहत अनुरागे।।

सीस जटा कटि मुनिपट बाँधे। तून कसे कर सर धनु काँधे॥
वेदी पर मुनि साधु समाजू। सीय सहित राजत रघुराजू॥
वलकल बसन जटिल तनु स्यामा। जनु मुनि वेषु कीन्ह रति कामा॥
कर कमलनि धनु सायकु फेरत। जिय की जरनि मनहुँ हँसि हेरत॥

दो०—लसत मंजु मुनि मंडली, मध्य सीय रघुचंदु।
ज्ञान सभा जनु तनु धरे, भगति सच्चिदानंदु॥१५॥

सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष सोक सुख दुख गन॥
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं॥
वचन सपेम लखन पहिचाने। करत प्रनामु भरत जिअँ जाने॥
बंधु सनेह सरस येहि ओरा। उत साहिब सेवा बरजोरा॥
मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई। सुकवि लखन मन की गति भनई॥
रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू॥
कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा॥
उठे रामु सुनि पेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥

दो०—बरबस लिए उठाइ, उर, लाए कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि, बिसरे सबहिं अपान॥१६॥

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कबि कुल अगम करम मन बानी॥
परम पेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई॥
कहहु सुपेमु प्रगट को करई। केहि छायाँ कवि मति अनुसरई॥
कबिहि अरथ आखर बलु साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा॥
अगम सनेहु भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को॥
सो मइँ कुमति कहौं केहि भाँती। बाज सुराग कि गाँडर ताँती॥
मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की। सुरगन सभय धकधकी धरकी॥
समुझाए सुरगुर जड़ जागे। बरषि प्रसून प्रसंसन लागे॥

दो०—मिलि सप्रेम रिपुसूदनही, केवटु भेंटेउ राम।
भूरि भायँ भेंटे भरत, लछिमन करत प्रनाम॥१७॥

भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई। बहुरि निषादु लीन्ह उर लाई।।
पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे। अभिमत आसिष पाइ अनन्दे।।
सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर सिय पद पदुम परागा।।
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए। सिर कर कमल परसि बैठाए।।
सीय असीस दीन्हि मन माहीं। मगन सनेह देह सुधि नाहीं।।
सब बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच उर अपडर बीता।।
कोउ किछु कहइ न कोउ किछु पूंछा। प्रेम भरा मन निज गति छूंछा।।
तेहि अवसर केवट धीरजु धरि। जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि।।

दो०—नाथ साथ मुनिनाथ के, मातु सकल पुर लोग।
सेवक सेनप सचिव सब, आए बिकल बियोग।।१८

सीलसिन्धु सुनि गुर आगवनू। सिय समीप राखे रिपुदवनू।।
चले सबेग राम तेहि काला। धीर धरम धुर दीन दयाला।।
गुरहि देखि सानुज अनुरागे। दंड प्रनाम करन प्रभु लागे।।
मुनिवर धाइ लिए उर लाई। प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई।।
प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू।।
रामसखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुटत सनेह समेटा।।
रघुपति भगति सुमंगल मूला। नभ सराहिं सुर बरषहिं फूला।।
येहि सम निपट नीच कोउ नाहीं। बड़ बसिष्ठ सम को जग माहीं।।

दो०—जेहि लखि लखनहुँ तें अधिक, मिले मुदित मुनिराउ।।
सो सीतापति भजन को, प्रगट प्रताप प्रभाउ।।१९

आरत लोगु राम सब जाना। करुनाकर सुजान भगवाना।।
जो जेहि भायं रहा अभिलाषी। तेहि तेहि कै तसि तसि रुख राखी।।
सानुज मिलि क्षण महुँ सब काहू। कीन्ह दूरि दुखु दारुन दाहू।।
येह बड़ि बात राम कै नाहीं। जिमि घट कोटि एक रबि छाँहीं।।
मिलि केवटहि उमगि अनुरागा। पुरजन सकल सराहहिं भागा।।
देखी राम दुखित महतारीं। जनु सुबेलि अवलीं हिम मारीं।।

प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभायँ भगति मति भेई।।
पग पारं कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम विधि सिर धरि खोरी।।
दो०—भेंटी रघुवर मातु सब, करि प्रबोधु परितोषु।
अंब ईस आधीन जगु, काहु न देइअ दोसु।।२०।।
गुरतिअ पद बंदे दुहु भाई। सहित विप्रतिअ जे संग आई।।
गंग गौरि सम सब सनमानी। देहिं असीस मुदित मृदु बानी।।
गहि पद लगे सुमित्रा अंका। जनु भेंटी संपति अति रंका।।
पुनि जननी चरननि दोउ भ्राता। परे पेम ब्याकुल सब गाता।।
अति अनुराग अंब उर लाए। नयन सनेह सलिल अन्हवाए।।
तेहि अवसर कर हरष विषादू। किमि कवि कहइ मूक जिम स्वादू।।
मिलि जननिहि सानुज रघुराऊ। गुर सन कहेउ कि धारिअ पाऊ।।
पुरजन पाइ मुनीस नियोगू। जल थल तकि तकि उतरेउ लोगू।।
दो०—महिसुर मंत्री मातु गुर, गने लोग लिए साथ।
पावन आस्रमु गवन किए, भरत लखन रघुनाथ।।२१।।
सीय आइ मुनिवर पग लागी। उचित असीस लही मन माँगी।।
गुरपतिनिहिं मुनितिअन्ह समेता। मिलीं पेमु कहि जाय न जेता।।
बंदि बंदि पग सिय सबहीं के। आसिरबचन लहे प्रिय जी के।।
सासु सकल सब सीय निहारी। मूंदे नयन सहम सुकुमारी।।
परीं बधिक बस मनहुं मरालीं। काह कीन्ह करतार कुचालीं।।
तिन्ह सिय निरखि निपट दुख पावा। सो सबु सहिअ जो दैउ सहावा।।
जनकसुता तब उर धरि धीरा। नील नलिन लोचन भरि नीरा।।
मिली सकल, सासुन्ह सिय जाई। तेहि अवसर करुना महि छाई।।
दो०—लागि लागि पग सबनि सिय, भेंटति अति अनुराग।
हृदय असीसहि पेमबस, रहिअहु भरी सोहाग।।२२।।
बिकल सनेह सीय सब रानी। बैठनि सबहिं कहेउ गुर ज्ञानी।।
कहि जग गति मायिक मुनिनाथा। कहे कछुक परमारथ गाथा।।

नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा।।
मरन हेतु निज नेहु विचारी। भे अति विकल धीर धुर धारी।।
कुलिस कठोर सुनत कटु वानी। विलपत लखन सीय सव रानी।।
सोक विकल अति सकल समाजू। मानहु राजू अकाजेउ आजू।।
मुनिवर वहुरि राम समुझाए। सहित समाज सुसरित नहाए।।
व्रत निरंवु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहु कहें जलु काहु न लीन्हा।।

दो०—भोरु भए रघुनंदनहिं, जो मुनि आयसु दीन्ह।
श्रद्धा भगति समेत प्रभु, सो सवु सादर कीन्ह।।२३

करि पितु क्रिया वेद जसि वरनी। भे पुनीत पातक तम तरनी।।
जासु नाम पावक अघ तूला। सुमिरत सकल सुमंगल मूला।।
सुद्ध सो भएउ साधु संमत अस। तीरथ आवाहन सुरसरि जस।।
सुद्ध भए दुइ वासर वीते। वोले गुर सनमातु पिरीते।।
नाथ लोग सव निपट दुखारी। कंद मूल फल अंवु अहारी।।
सानुज भरत सचिव सम माता। देखि मोहि पल जिमि जुग जाता।।
सव समेत पुर धारिअ पाऊ। आपु इहाँ अमरावति राऊ।।
वहुत कहेउँ सव किएउँ ढिठाई। उचित होइ तस करिअ गोसाईं।।

दो०—धरम सेतु करुनायतन, कस न कहहु अस राम।
लोग दुखित दिन दुइ दरसु, देखि लहहुँ विस्राम।।२४

राम वचन सुनि सभय समाजू। जनु जलनिधि महुँ विकल जहाजू।।
सुनि गुर गिरा सुमंगल मूला। भएउ मनहु मारुत अनुकूला।।
पावनि पय तिहुँ काल नहाहीं। जो विलोकि अघ ओघ नसाहीं।।
मंगल मूरति लोचन भरि भरि। निरखहिं हरषि दंडवत करि करि।।
राम सैल वन देखन जाहीं। जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं।।
झरना झरहिं सुधा सम वारी। त्रिविध तापहर त्रिविध वयारी।।
विटप वेलि तृन अगनित जाती। फल प्रसून पल्लव वहु भाँती।।
सुन्दर सिला सुखद तरु छाहीं। जाइ वरनि वन छवि केहि पाहीं।।

दो०—सरनि सरोरुह जल विहँग, कूजत गुंजत भृङ्ग।
वैर विगत विहरत विपिन, मग विहंग वहु रंग॥२५॥

कोल किरात भिल्ल वनवासी। मधु सुचि सुन्दर स्वाद सुधा सी॥
भरि भरि परन पुटीं रचि रुरीं। कंद मूल फल अंकुर जूरीं॥
सबहिं देहिं करि विनय प्रनामा। कहि कहि स्वाद भेद गुन नामा॥
देंहि लोक वहु मोल न लेहीं। फेरत राम दोहाई देहीं॥
कहहिं सनेह मगन मदु वानी। मानत साधु पेम पहिचानी॥
तुम सुकृती हम नीच निषादा। पावा दरसनु राम प्रसादा॥
हमहिं अगम अति दरसु तुम्हारा। जस मरु धरनि देवसरि धारा॥
राम कृपाल निषाद नेवाजा। परिजन प्रजउ चहिअ जस राजा॥

दो०—यह जिअँ जानि संकोचु तजि, करिअ छोहु लखि नेहु।
हमहिं कृतारथ करन लगि, फल तृन अंकुर लेहु॥२६॥

तुम्ह प्रिय पाहुने वन पगु धारे। सेवा जोगु न भाग हमारे॥
देव काह हम तुम्हहि गोसाईं। ईंधन पात किरात मिताईं॥
यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेंहि न वासन वसन चोराई॥
हम जड़ जीव जीवगन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती॥
पाप करत निसि वासर जाहीं। नहिं पट कटि नहीं पेट अघाहीं॥
सपनेहु धरम वुद्धि कस काऊ। येहु रघुनंदन दरस प्रभाऊ॥
जव तें प्रभु पद पदुम निहारे। मिटे दुसह दुख दोष हमारे॥
वचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिन्हके भाग सराहन लागे।

छं०—लागे सराहन भाग सब अनुराग वचन सुनावहीं।
वोलनि मिलनि सिय राम चरन सनेहु लखि सुखु पावहीं॥
नर नारि निदरहिं नेहु निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा।
तुलसी कृपा रघुवंसमनि की लोह लै नौका तिरा॥

सो०—विहरहिं वन चहुँ ओर, प्रति दिन प्रमुदित लोग सब।
जल ज्यों दादुर मोर, भए पीन पावस प्रथम॥२७॥

पुर नर नारि मगन अति प्रीती। बासर जाहिं पलक सम बीती।।
सीय सासु प्रति वेष बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई।।
लखा न मरमु राम बिनु काहू। माया सब सिय माया नाहू।।
सीय सासु सेवा बस कीन्हीं। तिन्ह लहि सुख सिख आसिष दीन्हीं।।
लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछतानि अघाई।।
अवनि जमहि जाचति कैकेई। महि न बीचु बिधि मीचु न देई।।
लोकहु बेद बिदित कवि कहहीं। राम बिमुख थलु नरक न लहहीं।।
यहु संसउ सबकें मन माहीं। राम गवनु बिधि अवध कि नाहीं।।

दो०—निसि न नींद नहिं भूख दिन, भरतु बिकल सुठि सोच।
नीच कीच बिच मगन जस, मीनहि सलिल संकोच।।२८।।

कीन्हि मातु मिस काल कुचाली। ईति भीति जस पाकत साली।।
केहि बिधि होइ राम अभिषेकू। मोहि अवकलत उपाउ न एकू।।
अवसि फिरहिं गुर आयेसु मानी। मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी।।
मातु कहेहु बहुरहिं रघुराऊ। रामजननि हठ करबि कि काऊ।।
मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि मह कुसमउ बाम बिधाता।।
जौं हठ करौं त निपट कुकरमू। हर गिरि तें गुरु सेवक धरमू।।
एकउ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैनि बिहानी।।
प्रात नहाइ प्रभुहि सिरु नाई। बैठत पठए रिषयँ बोलाई।।

दो०—गुरु पद कमल प्रनामु करि, बैठे आयेसु पाइ।
बिप्र महाजन सचिव सब, जुरे सभासद आइ।।२९।।

बोले मुनिबरु समय समाना। सुनहुँ सभासद भरत सुजाना।।
धरम धुरीन भानुकुल भानू। राजा रामु स्वबस भगवानू।।
सत्यसंघ पालक श्रुति सेतू। राम जनमु जग मंगल हेतू।।
गुर पितु मातु बचन अनुसारी। खल दलु दलन देव हितकारी।।
नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सम जान जथारथु।।
बिधि हरि हरु ससि रबि दिसिपाला। माया जीव करम कुलि काला।।

अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताईं। जोग सिद्धि निगमागम गाईं॥
करि बिचारि जिअँ देखहु नीकें। राम रजाइ सीस सबहीं कें॥

दो०—राखें राम रजाइ रुख, हम सब कर हित होइ।
समुझि सयाने करहु अब, सब मिलि संमत सोइ॥३०॥

सब कहुँ सुखद राम अभिषेकू। मंगल मोद मूल मगु एकू॥
केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ। कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ॥
सब सादर सुनि मुनिबर बानी। नय परमारथ स्वारथ सानी॥
उतरु न आव लोग भए भोरे। तब सिरु नाइ भरत कर जोरे॥
भानुबंस भए भूप घनेरे। अधिक एक तें एक बड़ेरे॥
जनम हेतु सब कहँ पितु माता। करम सुभासुभ देइ बिधाता॥
दलि दुख सजइ सकल कल्याना। अस असीस राउरि जगु जाना॥
सो गोसाइँ बिधि गति जेहिं छेकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी॥

दो०—बूझिअ मोहि उपाउ अब, सो सब मोर अभागु।
सुनि सनेहमय, बचन गुर, उर उमगा अनुरागु॥३१॥

तात बात फुरि राम कृपाहीं। राम बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं॥
सकुचौं तात कहत एक बाता। अरध तजहिं बुध सरबसु जाता॥
तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिअहि लखनु सीय रघुराई॥
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता। भे प्रमोद परिपूरन गाता॥
मन प्रसन्न तन तेजु बिराजा। जनु जिए राउ रामु भए राजा॥
बहुत लाभु लोगन्ह लघु हानी। सम दुख सुख सब रोवहिं रानी॥
कहहिं भरतु मुनि कहा सो कीन्हें। फलु जग जीवन्ह अभिमत दीन्हें॥
कानन करउँ जनम भरि बासू। येहि तें अधिक न मोर सुपासू॥

दो०—अंतरजामी रामु सिय, तुम्ह सर्बज्ञ सुजान।
जौं फुर कहहु त नाथ निज, कीजिअ बचनु प्रवान॥३२॥

भरत बचन सुनि देख सनेहू। सभा सहित मुनि भएउ बिदेहू॥
भरत महा महिमा जलरासी। मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी॥

गा चह पार जतनु हियँ हेरा। पावत नाव न बोहितु बेरा॥
औरु करिहि को भरत बड़ाई। सरसीं सीपि के सिंधु समाई॥
भरतु मुनिहि मन भीतर भाए। सहित समाज राम पहिं आए॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह सुआसनु। बैठे सब सुनि मुनि अनुसासनु॥
बोले मुनिवरु बचन बिचारी। देस काल अवसर अनुहारी॥
सुनहु राम सर्बज्ञ सुजाना। धरम नीति गुन ज्ञान निधाना॥

दो०—सब के उर अंतर बसहु, जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन जननी भरत हित, होइ सो कहिअ उपाउ॥३३॥

आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ॥
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ। नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ॥
सब कर हित रुख राउरि राखें। आयेसु किएँ मुदित फुर भाखें॥
प्रथम जो आयेसु मो कहुँ होई। माथे मानि करउँ सिख सोई॥
पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं। सो सब भांति घटिहि सेवकाईं॥
कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाषा। भरत सनेहँ बिचारु न राखा॥
तेहि तें कहउँ बहोरि बहोरी। भरत भगति बस भई मति मोरी॥
मोरें जान भरत रुचि राखी। जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी॥

दो०—भरत बिनय सादर सुनिअ, करिअ बिचारु बहोरि।
करब साधुमत लोकमत, नृपनय निगम निचोरि॥३४॥

गुरु अनुरागु भरत पर देखी। राम हृदयँ आनंदु बिसेषी॥
भरतहि धरमधुरंधर जानी। निज सेवक तन मानस बानी॥
बोले गुर आयेसु अनुकूला। बचन मंजु मृदु मंगल मूला॥
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भएउ न भुअन भरत सम भाई॥
जे गुर पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी॥
राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू॥
लखि लघु बंधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बड़ाई॥
भरतु कहहिं सोइ किएँ भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई॥

०—तब मुनि बोले भरतसन, सब सँकोचु तजि तात।
कृपासिन्धु प्रिय बंधु सन, कहहु हृदय की बात॥३५॥

सुनि मुनि वचन राम रुख पाई। गुर साहिव अनुकूल अघाई॥
लखि अपने सिर सबु छरुभारू। कहि न सकहिं क्छिु करहिं विचारू॥
पुलकि सरीर सभाँ भए ठाढ़े। नीरज नयन नेह जल वाढ़े॥
कहव मोर मुनिनाथ निवाहा। येहि तें अधिक कहौं मैं काहा॥
मइँ जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥
मो पर कृपा सनेहु विषेषी। खेलत खुनिस न कवहू देखी॥
सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू। कवहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मइँ प्रभु कृपा रीति जिअ जोही। हारेहुँ खेल जितावहिं मोहीं॥

०—महूँ सनेह सकोच बस, सनमुख कहे न वयन।
दरसन तपित न आजु लगि, पेम पियासे नयन॥३६॥

विधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच वीचु जननी मिस पारा॥
येहउ कहत मोहि आजु न सोभा। अपनी समुझि साधु सुचि को भा॥
मातु मंदि मइ साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली॥
फरइ कि कोदव वालि सुसाली। मुकता प्रसव कि संवुक काली॥
सपनेहु दोस कलेसु न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू॥
विनु समझे निज अघ परिपाकू। जारिउ जायँ जननि कहि काकू॥
हृदय हेरि हारेउ सव ओराँ। एकहि भाँति भलेहि भल मोराँ॥
गुर गोसाइँ साहिव सिय रामू। लागत मोहि नीक परिनामू॥

तो०—साधु सभाँ गुर प्रभु निकट, कहउँ सुथल सतिभाउ।
प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर, जानहि मुनि रघुराउ॥३७॥

भूपति मरनु प्रेम पनु राखी। जननी कुमति जगनु सवु साखी॥
देखि न जाहिं विकल महतारी। जरहिं दुसह जर पुर नारी॥
भहीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला॥

सुनि वन गवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनि वेष लखनु सिय साथा ।।
विनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ। संकरु साखि रहेउ येहि घाएँ ।।
वहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिस कठिन उर भएउ न वेहू ।।
अव सवु आँखिन्ह देखेउँ आई। जिअत जीव जड़ सवइ सहाई ।।
जिन्हहि निरखि मग साँपिनि वीछीं। तजहिं विषम विष तामस तीछीं ।।

दो०—तेइ रघुनंदनु लखनु सिय, अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख, देउ सहावइ काहि ।।३८

सुनि अति विकल भरत वर वानी। आरति प्रीति विनय नय सानी ।।
सोक मगन सव सभा खभारू। मनहु कमल वन परेउ तुषारू ।।
कहि अनेक विधि कथा पुरानी। भरत प्रवोधु कीन्ह मुनि ज्ञानी ।।
वोले उचित वचन रघुनंदू। दिनकर कुल कैरव वन चंदू ।।
तात जायँ जिअँ करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी ।।
तीन काल तिभुअन मत मोरें। पुन्यसिलोक तात तर तोरें ।।
उर आनत तुम्ह पर कुटलाई। जाइ लोक परलोकु नसाई ।।
दोसु देंहि जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई ।।

दो०—मिटिहइ पापप्रपंच सव, अखिल अमंगल भार।
लोक सुजसु परलोक सुख, सुमिरतु नाम तुम्हार ।।३९

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी। भरत भूमि रह राउरि राखी ।।
तात कुतरक करहु जनि जाएँ। वैर प्रेम नहिं दुरइ दुराए ।।
मुनिगन निकट विहँग मृग जाहीं। वाधक वधिक विलोकि पराहीं ।।
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना। मानुष तनु गुन ज्ञान निधाना ।।
तात तुम्हहि मइँ जानेउँ नीकें। करउँ काह असमंजसु जी कें ।।
राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ पेम पन लागी ।।
तासु वचन मेटत मन सोचू। तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू ।।
तापर गुर मोहि आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा ।।

दो०—मनु प्रसन्न करि सकुच तजि, कहहु करउं सोइ आजु।
सत्यसंध रघुवर वचन, सुनि भा सुखी समाजु ॥४०॥

सुरगन सहित सभय सुरराजू। सोचहिं चाहत होन अकाजू ॥
करत उपाउ वनत कछु नाहीं। राम सरन सव गे मन माहीं ॥
वहुरि विचारि परस्पर कहहीं। रघुपति भगत भगति वस अहहीं ॥
सुधि करि अंवरीष दुरवासा। भे सुर सुरपति निकट निरासा ॥
सहे सुरन्ह वहु काल विषादा। नरहरि किए प्रगट प्रहलादा ॥
लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा, अव सुर काज भरत कें हाथा ॥
आन उपाउ न देखिअ देवा। मानत रामु सुसेवक सेवा ॥
हिय सपेम सुमिरहु सव भरतहिं। निज गुन सील राम वस करतहिं ॥

दो०—सुनि सुरमत सुरगुरु कहेउ, भल तुम्हार वड़ भागु ॥
सकल सुमंगल मूल जग, भरत चरन अनुरागु ॥४१॥

सीतापति सेवक सेवकाई। कामधेनु सय सरिस सुहाई ॥
भरत भगति तुम्हरें मन आई। तजहु सोचु विधि वात वनाई ॥
देखु देवपति भरत प्रभाऊ। सहज सुभाय विवस रघुराऊ ॥
मन थिर करहु देव डरु नाहीं। भरतहि जानि राम परिछाहीं ॥
सुनि सुरगुर सुर संमत सोचू। अंतरजामी प्रभुहि संकोचू ॥
निज सिर भारु भरत जिय जाना। करत कोटि विधि उर अनुमाना ॥
करि विचारु मन दीन्ही ठीका। राम रजायेसु आपन नीका ॥
निज पन तजि राखेउ पनु मोरा। छोहु सनेहु कीन्ह नहिं थोरा ॥

दो०—कीन्ह अनुग्रह अमित अति, सव विधि सीतानाथ।
करि प्रनामु वोले भरतु, जोरि जलज जुग हाथ ॥४२॥

कहउ कहावउं का अव स्वामी। कृपा अंवुनिधि अंतरजामी ॥
गुर प्रसन्न साहिव अनुकूला। मिटी मलिन मन कलपित सूला ॥
अपडर डरेउं न सोच समूलें। रविहि न दोसु देव दिसि भूले ॥
मोर अभागु मातु कुटिलाई। विधिगति विषम काल कठिनाई ॥

पाउ रोपि सब मिलि मोहि घाला। प्रनतपाल पन आपन पाला॥
येह नइ रीति न राउरि होई। लोकहुँ वेद विदित नहि गोई॥
जगु अनभल भल एकु गोसाईं। कहिअ होइ भल कासु भलाई॥
देउ देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख विमुख न काहुहि काऊ॥

दो०—जाइ निकट पहिचानि तरु, छाँह समनि सब सोच।
माँगत अभिमत पाव जगु, राउ रंकु भल पोच॥४

लखि सब विधि गुर स्वामी सनेहू। मिटेउ छोभु नहिं मन संदेहू॥
अब करुनाकर कीजिअ सोई। जन हित प्रभु चित छोभु न होई॥
जो सेवकु साहिबहि संकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची॥
सेवक हित साहिब सेवकाई। करइ सकल सुख लोभ बिहाई॥
स्वारथु नाथ फिरें सबहीं का। किएँ रजाइ कोटि विधि नीका॥
येह स्वारथ परमारथ सारू। सकल सुकृतफल सुगति सिंगारू॥
देव एक विनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी॥
तिलक समाजु साजि सबु आना। करिअ सुफल प्रभु जौं मन माना॥

दो०—सानुज पठइअ मोहि बन, कीजिअ सबहि सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बंधु दोउ, नाथ चलउँ मैं साथ॥४

नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई। बहुरिअ सीय सहित रघुराई॥
जेहिं विधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुनासागर कीजिअ सोई॥
देवँ दीन्ह सबु मोहि अभारू। मोरें नीति न धरम बिचारू॥
कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत कें चित चेतू॥
उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई। सो सेवकु लखि राज लजाई॥
अस मैं अवगुन उदधि अगाधू। स्वामि सनेह सराहत साधू॥
अब कृपाल मोहि सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाइ न पावा॥
प्रभु पद सपथ कहउँ सतिभाऊ। जग मंगल हित एक उपाऊ॥

दो०—प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देब।
सो सिर धरि धरि करिहि सबु, मिटिहि अनट अवरेब॥४

भरत बचन सुचि सुनि सुर हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥
असमंजस बस अवध नेवासी। प्रमुदित मन तापस बनबासी॥
चुपहिं रहे रघुनाथ संकोची। प्रभु गति देखि सभा सब सोची॥
जनक दूत तेहिं अवसर आए। मुनि बसिष्ठ सुनि बेगि बोलाए॥
करि प्रनामु तिन्ह रामु निहारे। बेषु देखि भए निपट दुखारे॥
दूतन्ह मुनिबर बूझी बाता। कहहु बिदेह भूप कुसलाता॥
सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा। बोले चर बर जोरें हाथा॥
बूझब राउर सादर साईं। कुसल हेतु सो भयउ गोसाईं॥

दो०—नाहिं त कोसलनाथ के, साथ कुसल गइ नाथ।
मिथिला अवध बिसेष तें, जगु सब भयउ अनाथ॥४६॥

कोसलपति गति सुनि जनकौरा। भे सब लोक सोकबस बौरा॥
जेहिं देखे तेहिं समय बिदेहू। नामु सत्य अस लाग न केहू॥
रानि कुचालि सुनत नरपालहि। सूझ न कछु जस मनि बिनु ब्यालहि॥
भरत राजु रघुबर बनबासू। भा मिथिलेसहि हृदयँ हराँसू॥
नृप बूझे बुध सचिव समाजू। कहहु बिचारि उचित का आजू॥
समुझि अवध असमंजस दोऊ। चलिअ कि रहिअ न कह कछु कोऊ॥
नृपहिं धीर धरि हृदयँ बिचारी। पठए अवध चतुर चर चारी॥
बूझि भरत सतिभाव कुभाऊ। आएहु बेगि न होइ लखाऊ॥

दो०—गए अवध चर भरत गति, बूझि देखि करतूति।
चले चित्रकूटहिं भरतु, चार चले तेरहूति॥४७॥

दूतन्ह आइ भरत कइ करनी। जनक समाज जथामति बरनी॥
सुनि गुर परिजन सचिव महीपति। भे सब सोच सनेह बिकल अति॥
धरि धीरजु करि भरत बड़ाई। लिए सुभट साहनी बोलाई॥
घर पुर देस राखि रखवारे। हय गय रथ बहु जान सँवारे॥
दुघरी साजि चले ततकाला। किये बिश्रामु न मग महिपाला॥
भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा। चले जमुन उतरन सबु लागा॥

खबरि लेन हम पठए नाथा। तिन्ह कहि अस महि नाएउ माथा ।।
साथ किरात छ सातक दीन्हे। मुनिबर तुरत बिदा चर कीन्हे ।।

दो०—सुनत जनक आगवनु सबु, हरषेउ अवध समाजु।
रघुनंदनहि सकोचु बड़, सोच बिबस सुरराजु ।।४८

गरइ गलानि कुटिल कैकेई। काहि कहइ केहि दूषनु देई ।।
अस मन आनि मुदित नर नारी। भएउ बहोरि रहब दिन चारी ।।
येहि प्रकार गत बासर सोऊ। प्रात नहान लाग सबु कोऊ ।।
करि मज्जनु पूजहिं नर नारी। गनप गौरि तिपुरारि तमारी ।।
रमारमन पद बंदि बहोरी। बिनवहिं अंजुलि अंचल जोरी ।।
राजा रामु जानकी रानी। आनँद अवधि अवध रजधानी ।।
सुबस बसउ फिरि सहित समाजा। भरतहि रामु करहुँ जुबराजा ।।
येहि सुख सुधा सींचि सब काहू। देव देहु जग जीवन लाहू ।।

दो०—गुर समाज भाइन्ह सहित, रामराजु पुर होउ।
अछत राम राजा अवध, मरिअ माँग सब कोउ ।।४९

सुनि सनेहमय पुरजन बानी। निंदहिं जोग बिरति मुनि ग्यानी ।।
येहि बिधि नित्य करम करि पुरजन। रामहि करहिं प्रनाम पुलकि तन ।।
सावधान सबहीं सममानहि। सकल सराहत कृपा निधानहि ।।
ऊँच नीच मध्यम नर नारी। लहहिं दरसु निज निज अनुहारी ।।
लरकाईहिं तें रघुबर बानी। पालत नीति प्रीति पहिचानी ।।
सील सँकोच सिंधु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ ।।
कहत राम गुन गन अनुरागे। सब निज भाग सराहन लागे ।।
हम सम पुन्यपुंज जग थोरे। जिन्हहि राम जानत करि मोरे ।।

दो०—प्रेम मगन तेहि समय सब, सुनि आवत मिथिलेसु।
सहित सभा संभ्रम उठेउ, रबिकुल कमल दिनेसु ।।५०

भाइ सचिव गुर पुरजन साथा। आगें गवनु कीन्ह रघुनाथा।।
गिरिबरु दीख जनकपति जबहीं। करि प्रनामु रथ त्यागेउ तबहीं।।
राम दरसु लालसा उछाहू। पथ स्रम लेसु कलेसु न काहू।।
मन तहँ जहँ रघुबर बैदेही। बिनु मन तन दुख सुख केही।।
आवत जनकु चले येहि भाँती। सहित समाज प्रेम मति माती।।
आए निकट देखि अनुरागे। सादर मिलन परसपर लागे।।
लगे जनकु मुनि जन पद बंदन। रिषिन्ह प्रनामु कीन्ह रघुनंदन।।
भाइन्ह सहित रामु मिलि राजहिं। चले लवाइ क समेत समाजहिं।।

दो०—आस्रम सागर सांत रस, पूरन पावन पाथु।
सेन मनहुँ करुना सरित लिए जात रघुनाथ।।५१।।

बोरति ग्यान बिराग करारे। बचन ससोक मिलत नद नारे।।
सोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट तरुबर कर भंगा।।
बिषम बिषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा।।
केवट बुध बिद्या बड़ि नावा। सकहिं न खेइ ऐक नहिं आवा।।
बनचर कोल किरात बिचारे। थके बिलोकि पथिक हियँ हारे।।
आस्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई।।
सोक बिकल दोउ राज समाजा। रहा न ग्यानु न धीरजु लाजा।।
भूप रूप गुन सील सराही। रोवहिं सोक सिंधु अवगाहीं।।

छं०—अवगाहि सोक समुद्र सोचहिं नारि नर ब्याकुल महा।
दै दोष सकल सरोष बोलहिं बाम बिधि कीन्हों कहा।।
सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा बिदेह की।
तुलसी न समरथु कोउ जो तरि सकै सरित सनेह की।।

सो०—किए अमित उपदेस जहँ तहँ लोगन्ह मुनिबरन्ह।
धीरजु धरिअ नरेस कहेउ बसिष्ठ बिदेह सन।।५२।।

जासु ग्यानु रबि भव निसि नासा। बचन किरन मुनि कमल बिकासा।।
तेहि कि मोह ममता निअराई। येह सिय राम सनेह बड़ाई।।

विषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिविध जीव जग वेद वखाने॥
राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभाँ वड़ आदर तासू॥
सोह न राम पेम विनु ज्ञानू। करनधार विनु जिमि जलजानू॥
मनि वहु विधि विदेहु समुझाए। रामघाट सव लोग नहाए॥
सकल सोक संकुल नर नारी। सो वासरु वीतेउ विनु वारी॥
पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू। प्रिय परिजन कर कौनु विचारू॥

दो०—दोउ समाज निमिराजु, रघुराजु नहाने प्रात।
वैठे सव वट विटप तर मन, मलीन क्रस गात॥५३॥

जे महिसुर दसरथपुर वासी। जे मिथिलापति नगर नेवासी॥
हंसवंस गुर जनक पुरोधा। जिन्ह जग मगु परमारथु सोधा॥
लगे कहन उपदेस अनेका। सहित धरम नय विरति विवेका॥
कौसिक कहि कहि कथा पुरानी। समुझाई सव सभा सुवानी॥
तव रघुनाथ कौसकहि कहेऊ। नाथ कालि जल विनु सवु रहेऊ॥
मुनि कह उचित कहत रघुराई। गएऊ वीति दिन पहर अढ़ाई॥
रिषि रुख लखि कह तेरहुति राजू। इहाँ उचित नहिं असन अनाजू॥
कहा भूप भल सवहि सोहाना। पाइ राजायेसु चले नहाना॥

दो०—तेहि अवसर फलफूल दल, मूल अनेक प्रकार।
लइ आए वनचर विपुल, भरि भरि काँवरि भार॥५४॥

कामद भे गिरि राम प्रसादा। अवलोकत अपहरत विषादा॥
सर सरिता वन भूमि विभागा। जनु उमगत आनँद अनुरागा॥
वेलि विटप सव सफल सफूला। वोलत खग मृग अलि अनुकूला॥
तेहिं अवसर वन अधिक उछाहू। त्रिविध समीर सुखद सव काहू॥
जाइ न वरनि मनोहरताई। जनु महि करत जनक पहुनाई॥
तव सव लोग नहाइ नहाई। राम जनक मुनि आयेसु पाई॥
देखि देखि तरुवर अनुरागे। जहँ जहँ पुरजन उतरन लागे॥
दल फल मूल कंद विधि नाना। पावन सुन्दर सुधा समाना॥

दो०—सादर सब कहँ रामगुर, पठए भरि भरि भार।
पूजि पितर सुर अतिथि गुर, लगे करन फलहार ॥५५॥

येहि विधि वासर वीते चारी। रामु निरखि नर नारि सुखारी ॥
दुहुँ समाज असि रुचि मन माहीं। विनु सिय राम फिरव भल नाहीं ॥
सीता राम संग वनवासू। कोटि अमरपुर सरिस सुपासू ॥
परिहरि लखन रामु वैदेही। जेहि घरु भाव वाम विधि तेही ॥
दाहिन दइउ होइ जव सवहीं। राम समीप बसिअ वन तवहीं ॥
मंदाकिनि मज्जनु तिहुँ काला। राम दरसु मुद मंगल माला ॥
अटनु रामगिरि वन तापस थल। असनु अमिअ सम कंद मूल फल ॥
सुख समेत सवत दुइ साता। पल सम होहि न जनिअहि जाता ॥

दो०—येहि सुख जोग न लोग सव, कहहिं कहाँ अस भागु।
सहज सुभाय समाज दुहुँ, राम चरन अनुरागु ॥५६॥

येहि विधि सकल मनोरथ करहीं। वचन सप्रेम सुनत मन हरहीं ॥
सीय मातु तेहि समयँ पठाईं। दासीं देखि सुअवसरु आईं ॥
सावकास सुनि सब सिय सासू। आएउ जनकराज रनिवासू ॥
कौंसल्याँ सादर सनमानी। आसन दिए समय सम आनी ॥
सीलु सनेहु संकल दुहुँ ओरा। द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा ॥
पुलक सिथिल तन बारि विलोचन। महि नख लिखन लगीं सब सोचन ॥
सव सिय राम प्रीति कि सी मूरति। जनु करुना वहु बेप विसूरति ॥
सीय मातु कह बिधि बुधि बाँकी। जो पय फेन फोर पवि टाँकी ॥

दो०—सुनिअ सुधा देखिअहि गरल, सब करतूति, कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल ॥५७॥

सुनि ससोच कह देवि सुमित्रा। बिधि गति वड़ि विपरीत विचित्रा ॥
जो सृजि पालइ हरइ बहोरी। बाल केलि सम विधि मति भोरी ॥

कौसल्या कह दोसु न काहू। करम बिबस दुखु सुखु छति लाहू॥
कठिन करम गति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फलदाता॥
ईस रजाइ सीस सबहीं कें। उतपति थिति लय बिषहु अमी कें॥
देबि मोहबस सोचिअ बादी। बिधि प्रपंचु अस अचल अनादी॥
भूपति जिअब मरब उर आनी। सोचिअ सखि लखि निज हितहानी॥
सीयमातु कह सत्य सुबानी। सुकृती अवधि अवधपति रानी॥

दो०—लखनु रामु सिय जाहुँ बन, भल परिनाम न पोचु।
गहबरि हिय कह कौसिला, मोहि भरत कर सोचु॥५८॥

ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सुत सुतबधू बिबुध सरि बारी॥
रामसपथ मैं कीन्हि न काऊ। सो करि कहौं सखी सतिभाऊ॥
भरत सील गुन बिनय बड़ाई। भायप भगति भरोस भलाई॥
कहत सारदहु कर मति हीचे। सागर सीपि कि जाहिं उलीचे॥
जानउँ सदा भरत कुलदीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा॥
कसें कनकु मनि पारिखि पाएँ। पुरुष परिखिअहिं समय सुभाएँ॥
अनुचित आजु कहब अस मोरा। सोक सनेह सयानप थोरा॥
सुनि सुरसरि सम पावनि बानीं। भईं सनेह बिकल सब रानीं॥

दो०—कौसल्या कह धीर धरि, सुनहु देबि मिथिलेसि।
को बिबेकनिधि बल्लभहि, तुम्हहि सकइ उपदेसि॥५९॥

रानि राय सन अवसरु पाई। अपनी भाँति कहब समुझाई॥
रखिअहिं लखनु भरतु गवनहिं बन। जो येह मत मानइ महीप मन॥
तौ भल जतनु करब सुबिचारी। मोरें सोचु भरत कर भारी॥
गूढ़ सनेह भरत मन माहीं। रहें नीक मोहि लागत नाहीं॥
लखि सुभाउ सुनि सरल सुबानी। सब भइँ मगन करुन रस रानी॥
नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि। सिथिल सनेह सिद्ध जोगी मुनि॥
सबु रनिवासु बिथकि लखि रहेऊ। तब धरि धीर सुमित्राँ कहेऊ॥
देबि दंड जुग जामिनि बीती। राममातु सुनि उठी सप्रीती॥

दो०—वेगि पाउ धारिअ थलहिं, कह सनेह सतिभाय।
हमरें तौ अब ईस गति, कँ मिथिलेसु सहाय ॥६०॥

लखि सनेहु सुनि बचन विनीता। जनकप्रिया गहे पायं पुनीता॥
देवि उचित असि विनय तुम्हारी। दसरथ घरनि राम महतारी॥
प्रभु अपने नीचहुँ आदरहीं। अगिनि धूम गिरि सिर तिन धरहीं॥
सेवक राउ करम मन वानी। सदा सहाय महेसु भवानी॥
रौरे अंग जोगु जग को है। दीप सहाय कि दिनकर सोहै॥
रामु जाइ बनु करि सुर काजू। अचल अवधपुर करिहहिं राजू॥
अमर नाग नर राम बाहु बल। सुख बसिहहिं अपने अपने थल॥
यह सब जागबलिक कहि राखा। देवि न होइ मुधा मुनि भाखा॥

दो०—असि कहि पग परि पेम अति, सिय हित विनय सुनाइ॥
सिय समेत सियमातु तब, चली सुआयेसु पाइ॥६१॥

प्रिय परिजनहिं मिली वैदेही। जो जेहिं जोगु भाँति तेहिं तेही॥
तापस वेष जानकी देखी। भा सबु विकल विषाद बिसेषी॥
जनग रामगुर आयेसु पाई। चले थलहिं सिय देखी आई॥
लीन्हि लाइ उर जनक जानकी। पाहुनि पावनि पेम प्रान की॥
उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू। भएउ भूप मनु मनहुँ पयागू॥
सिय सनेह बटु बाढ़त जोहा। तापर राम पेम सिसु सोहा॥
चिरजीवी मुनि ज्ञानु विकल जनु। बूड़त लहेउ बाल अवलंबनु॥
मोह मगन मति नहिं बिदेह की। महिमा सिय रघुवर सनेह की॥

दो०—सिय पितु मातु सनेह बस, विकल न सकी सँभारि।
धरनिसुता धीरजु धरेउ, समउ सुधरमु विचारि॥६२॥

तापस वेष जनक सिय देखी। भएउ पेम परितोष बिसेषी॥
पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जग कह सब कोऊ॥
जिमि सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवन कीन्ह विधि अंड करोरी॥
गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे। येहि किवें साधु समाज घनेरे॥

पितु कह सत्य सनेह सुबानी। सीयसकुच महु मनहु समानी॥
पुनि पितु मातु लीन्हि उर लाई। सिख आसिष हित दीन्हि सुहाई॥
कहति न सीय सकुचि मन माहीं। इहाँ बसब रजनी भल नाहीं॥
लखि रुख रानि जनाएउ राऊ। हृदयँ सराहत सील सुभाऊ॥

दो०—बारबार मिलि भेंट सिय, बिदा कीन्हि सनमानि।
कही समय सिर भरत गति, रानि सुबानि सयानि॥६३॥

सुनि भूपाल भरत व्यवहारू। सोन सुगन्ध सुधा ससि सारू॥
मूंदे सजल नयन पुलके तन। सुजसु सराहन लगे मुदित मन॥
सावधान सुन सुमुखि सुलोचनि। भरत कथा भवबंध बिमोचनि॥
धरम राजनय ब्रह्मबिचारू। इह जथामति मोर प्रचारू॥
सो मति मोरि भरत महिमा हीं। कहइ काह छलि छुअति न छाहीं॥
बिधि गनपति अहिपति सिव सारद। कबि कोविद बुध बुद्धि बिसारद॥
भरत चरित कीरति करतूती। धरम सील गुन बिमल बिभूती॥
समुझत सुनत सुखद सब काहू। सुचि सुरसरि रुचि निदर सुधा हूँ॥

दो०—निरवधि गुन निरुपम पुरुषु, भरतु भरत सम जानि॥
कहिअ सुमेरु कि सेर सम, कबि कुल मति सकुचानि॥६४॥

अगम सबहिं बरनत बर बरनी। जिमि जलहीन मीन गम धरनी॥
भरत अमित महिमा सुन रानी। जानहिं राम न सकहिं बखानी॥
बरनि सप्रेम भरत अनभाऊ। तिअ जिअकी रुचि लखि कह राऊ॥
बहुरहिं लखन भरतु बन जाहीं। सब कर भल सबके मन माहीं॥
देवि परन्तु भरत रघुवर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी॥
भरतु अवधि सनेह ममता की। जद्यपि रामु सींव समता की॥
परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुं मनहुँ निहारे॥
साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत येहू॥

दो०—भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं, मनसहु राम रजाइ।
करिअ न सोचु सनेह बस, कहेउ भूप बिलखाइ॥६५॥

राम भरत गन गनत सप्रीती। निसि दंपतिहि पलक सम बीती॥
राज समाज प्रात जग जागे। न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे॥
गे नहाइ गुरु पहिं रघुराई। बंदि चरन बोले रुख पाई॥
नाथ भरतु पुरजन महतारी। सोक बिकल बनवास दुखारी॥
सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भए सहत कलेसू॥
उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा। हित सबहीं कर रौंरें हाथा॥ आपके
अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। मुनि पुलके लखि सील सुभाऊ॥
तुम्ह बिनु राम सकल सुख साजा। नरक सरिस दुहुँ राज समाजा॥ ठाठ बाट

दो०—प्रान प्रान के जीव के, जिव सुख के सुख राम।
तुम्ह तजि तात सुहात गृह, जिन्हहि तिन्हहि बिधि बाम॥६६॥

सो सुख करम धरम जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥
जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू॥
तुम्ह बिनु दुखी सुखी तुम्हते हीं। तुम्ह जानहु जिअँ जो जेहि केहीं॥
राउर आयेसु सिर सबही कें। बिदित कृपालहि गति सब नीकें॥
आपु आस्रमहिं धारिअ पाऊ। भएउ सनेह सिथिल मुनिराऊ॥
करि प्रनामु तब रामु सिधाए। रिषि धरि धीर जनक पहिं आए॥
राम बचन गुरु नृपहि सुनाए। सील सनेह सुभायँ सुहाए॥
महाराज अब कीजिअ सोई। सब कर धरमसहित हित होई॥

दो०—ग्याननिधान सुजान सुचि, धरमधीर नरपाल।
तुम्ह बिनु असमंजस समन, को समरथ येहि काल॥६७॥

सुनि मुनिबचन जनक अनुरागे। लखि गति ग्यानु बिरागु बिरागे॥
सिथिल सनेह गुनत मन माहीं। आए इहाँ कीन्हि भलि नाहीं॥
रामहि राय कहेउ बन जाना। कीन्ह आपु प्रिय प्रेमु प्रवाना॥
हम अब बन तें बनहि पठाई। प्रमुदित फिरब बिबेक बड़ाई॥
तापस मुनि महिसुर सुनि देखी। भए प्रेमबस बिकल बिसेषी॥
समउ समुझि धरि धीरजु राजा। चले भरत पहिं सहित समाजा॥

भरत आइ आगें भइ लीन्हे। अवसर सरिस सुआसन दीन्हे॥
तात भरत कह तेरहुतिराऊ। तुम्हहि विदित रघुबीर सुभाऊ॥
दो०—राम सत्यब्रत धरमरत, सब कर सीलु सनेहु॥
संकट सहत सकोचवस, कहिअ जो आयेसु देहु॥६८॥
सुनि तन पुलकि नयन भरि वारी। बोले भरतु धीर धरि भारी॥
प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू। कुलगुरु सम हित माय न बापू॥
कौसकादि मुनि सचिव समाजू। ज्ञान अंबुनिधि आपुनु आजू॥
सिसु सेवकु आयेसु अनुगामी। जानि मोहि सिख देइअ स्वामी॥
येहि समाज थल बूझब राउर। मौन मलिन मैं बोलब बाउर॥
छोटे वदन कहौं बड़ि बाता। छमब तात लखि बाम बिधाता॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवाधरमु कठिन जगु जाना॥
स्वामि धरम स्वारथहि विरोधू। वैरु अंधु प्रेमहि न प्रवोधू॥
दो०—राखि राम रुख धरमु ब्रतु, पराधीन मोहि जानि।
सबकें संमत सर्व हित, करिअ प्रेमु पहिचानि॥६९॥
भरत वचन सुनि देखि सुभाऊ। सहित समाज सराहत राऊ॥
सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे। अरथु अमित अति आखर थोरे॥
ज्यों मुखु मुकुर मुकुर निज पानी। गहि न जाइ अस अदभुत बानी॥
भूपु भरतु मुनि साधु समाजू। गे जहँ विबुध कुमुद द्विजराजू॥
सुनि सुधि सोच विकल सब लोगा। मनहुँ मीनमन नव जल जोगा॥
देव प्रथम कुलगुर गति देखी। निरखि विदेह सनेह बिसेषी॥
राम भगतिमय भरतु निहारे। सुर स्वारथी हहरि हिय हारे॥
सब कोउ राम प्रेममय पेखा। भए अलेख सोचवस लेखा॥
दो०—रामु सनेह सँकोच बस, कह ससोच सुरराजु।
रचहु प्रपंचहि पंच मिलि, नाहिं त भएउ अकाजु॥७०॥
सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देवि देव सरनागत पाही॥
फेरि भरत मति करि निज माया। पालु विबुध कुल करि छल छाया॥

विबुध विनय सुनि देबि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड़ जानी॥
मोसन कहहु भरत मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू॥
बिधि हरि हर माया बड़ि भारी। सोउ न भरत मति सकइ निहारी॥
सो मति मोहि कहत करु भोरी। चंदिनि कर कि चंडकर चोरी॥
भरत हृदयँ सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू॥
अस कहि सारद गइ बिधि लोका। बिबुध बिकल निसि मानहुँ कोका॥

दो०—सुर स्वारथी मलीन मन, कीन्ह कुमंत्र कुठाटु।
रचि प्रपंच माया प्रवल, भय भ्रम अरति उचाटु॥७१॥

करि कुचालि सोचत सुरराजू। भरत हाथ सबु काजु अकाजू॥
गए जनकु रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रबिकुल दीपा॥
समय समाज धरम अबिरोधा। बोले तब रघुबंस पुरोधा॥
जनक भरत संबादु सुनाई। भरत कहाउति कही सुहाई॥
तात राम जस आयेसु देहू। सो सबु करइ मोर मत येहू॥
सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी। बोले सत्य सरल मृदु बानी॥
बिद्यमान आपुनु मिथिलेसू। मोर कहब सब भाँति भदेसू॥
राउर राय रजायेसु होई। राउरि सपथ सही सिर सोई॥

दो०—राम सपथ सुनि मुनि, जनकु सकुचे सभा समेत॥
सकल बिलोकत भरत मुख, बनइ न उतरु देत॥७२॥

सभा सकुचबस भरत निहारी। राम बंधु धरि धीरजु भारी॥
कुसमय देखि सनेहु सँभारा। बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा॥
सोक कनकलोचन मति छोनी। हरी बिमल गुमनन जग जोनी॥
भरत बिबेक बराह बिसाला। अनायास उधरीं तेहि काला॥
करि प्रनामु सब कहँ कर जोरे। रामु राउ गुर साधु निहोरे॥
छमब आजु अति अनुचित मोरा। कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा॥
हियँ सुमिरी सारदा सुहाई। मानस तें मुखपंकज आई॥
बिमल बिबेक धरम नय साली। भरत भारती मंजु मराली॥

दो०—निरखि विवेक विलोचनन्हि, सिथिल सनेहँ समाजु।
करि प्रनामु बोले भरतु, सुमिरि सीय रघुराज ॥७३॥

प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी। पूज्य परम हित अंतरजामी॥
सरल सुसाहिबु सील निधानू। प्रनतपालु सर्बग्य सुजानू॥
समरथु सरनागत हितकारी। गुन गाहकु अवगुन अघहारी॥
स्वामि गोसाइंहि सरिस गोसाईं। मोहि समान मइँ साइँ दोहाईं॥
प्रभु पितु वचन मोहबस पेली। आएउँ इहाँ समाजु सँकेली॥
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू। अमिअ अमरपद माहुरु मीचू॥
राम रजाइ मेटि मन माहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं॥
सो महँ सब विधि कीन्ह ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई॥

दो०—कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर॥
दूषन भे भूषन सरिस, सुजसु चारु चहुँ ओर ॥७४॥

राउरि रीति सुबानि बड़ाई। जगत विदित निगमागम गाई॥
कूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसंकी॥
तेउ पुनि सरन सामुहें आए। सकृत प्रनामु किए अपनाए॥
देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने॥
को साहिब सेवकहि नेवाजी। आपु समाज साज सब साजी॥
निज करतूति न समुझिअ सपने। सेवक सकुच सोच उर अपने॥
सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी। भुजा उठाइ कहौं पन रोपी॥
पसु नाचत सुक पाठ प्रवीना। गुन गति नट पाठक आधीना॥

दो०—यों सुधारि सनमानि जन, किए साधु सिरमौर।
को कृपाल बिनु पालिहैं, विरदावलि बरजोर ॥७५॥

सोक सनेह कि बाल सुभाएँ। आएउँ लाइ रजायेसु बाएँ॥
तबहुँ कृपाल हेरि निज ओरा। सबहिं भाँति भल मानेऊ मोरा॥
देखेउँ पाय सुमंगल मूला। जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला॥
बड़े समाज विलोकेउँ भागू। बड़ी चूक साहिब अनुरागू॥

कृपा अनुग्रह अंगु अघाई। कीन्ह कृपानिधि सब अधिकाई।।
राखा मोर दुलार गोसाईं। अपने सील सुभायँ भलाई।।
नाथ निपट मइँ कीन्हि ढिठाई। स्वामि समाज सकोचु बिहाई।।
अविनय विनय जथारुचि वानी। छमहि देउ अति आरत जानी।।

दो०—सुहृद सुजान सुसाहिबहि, बहुत कहब बड़ि खोरि।
आयेसु देइअ देव अब, सबइ सुधारी मोरि।।७६।।

प्रभु पद पदुम पराग दोहाई। सत्य सुकृत सुख सींव सुहाई।।
सो करि कहौं हिये अपने की। रुचि जागत सोवत सपने की।।
सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई।।
अज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसादु जनु पावइ देवा।।
अस कहि प्रेम बिवस भए भारी। पुलक सरीर बिलोचन बारी।।
प्रभु पद कमल गहे अकुलाई। समउ सनेहु न सो कहि जाई।।
कृपासिंधु सनमानि सुबानी। बैठाए समीप गहि पानी।।
भरत बिनय सुनि देखि सुभाऊ। सिथिल सनेह सभा रघुराऊ।।

छं०—रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाजु मुनि मिथिलाधनी।
मन महुँ सराहत भरत भायप भगति की महिमा घनी।।
भरतहि प्रसंसत बिबुध बरषत सुमन मानस मलिन से।
तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम नलिन से।।

सो०—देखि दुखारी दीन दुहुँ समाज नर नारि सब।
मघवा महा मलीन मुए मारि मंगल चहत।।७७।।

कपट कुचालि सींव सुरराजू। पर अकाज प्रिय आपन काजू।।
काक समान पाकरिपु रीती। छली मलिन कतहूँ न प्रतीती।।
प्रथम कुमत करि कपटु सँकेला। सो उचाटु सबकें सिर मेला।।
सुर माया सब लोग विमोहे। राम प्रेम अतिसय न बिछोहे।।
भय उचाट वस मन थिर नाहीं। छन बन रुचि छन सदन सोहाहीं।।
दुबिध मनोगति प्रजा दुखारी। सरित सिंधु संगम जनु बारी।।

दुचित कतहुँ परितोषु न लहहीं। एक एक सन मरमु न कहहीं॥
लखि हियँ हँसि कह कृपानिधानू। सरिस स्वान मघवा निजु जानू॥

दो०—भरत जनकु मुनिजन सचिव, साधु सचेत विहाइ॥
लागि देवमाया सबहि, जथाजोग जनु पाइ॥७८॥

कृपासिंधु लखि लोग दुखारे। निज सनेह सुरपति छल भारे॥
सभा राउ गुर महिसुर मंत्री। भरत भगति सब कै मति जंत्री॥
रामहि चितवत चित्र लिखे से। सकुचत बोलत वचन सिखे से॥
भरत प्रीति नति विनय बड़ाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई॥
जासु बिलोकि भगति लवलेसू। प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू॥
महिमा तासु कहइ किमि तुलसी। भगति सुभाय सुमति हिय हुलसी॥
आपु छोटि महिमा बड़ि जानी। कवि कुल कानि मानि सकुचानी॥
कहि न सकति गुन रुचि अधिकाई। मति गति बाल वचन की नाईं॥

दो०—भरत विमल जसु विमल, विधु सुमति चकोरकुमारि।
उदित विमल जन हृदय नभ, एकटक रही निहारि॥७९॥

भरत सुभाउ न सुगम निगमहूँ। लघु मति चापलता कवि छमहूँ॥
कहत सुनत सति भाउ भरत को। सीय राम पद होइ न रत को॥
सुमिरत भरतहि प्रेमु राम को। जेहि न सुलभ तेहि सरिस बाम को॥
देखि दयाल दसा सबहीं की। राम सुजान जानि जन जी की॥
धरम धुरीन धीर नय नागर। सत्य सनेह सील सुखसागर॥
देसु कालु लखि समौ समाजू। नीति प्रीति पालक रघुराजू॥
बोले बचन बानि सरबसु से। हित परिनाम सुनत ससिरसु से॥
तात भरत तुम्ह धरम धुरीना। लोक वेद विद प्रेम प्रबीना॥

दो०—करम वचन मानस विमल, तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुर समाज लघु बंधु गुन, कुसमय किमि कहि जात॥८०॥

जानहु तात तरनि कुल रीती। सत्यसंध पितु कीरति प्रीती॥
समौ समाजु लाज गुरुजन की। उदासीन हित अनहित मन की॥

तुम्हि विदित सबहीं कर करमू। आपन मोर परम हित धरमू॥
मोहिं सब भाँति भरोस तुम्हारा। तदपि कहऊँ अवसर अनुसारा॥
तात तात बिनु बात हमारी। केवल गुरुकुल कृपा सँभारी॥
नतरु प्रजा पुरजन परिवारू। हमहिं सहित सब होत खुआरू॥
जौं बिनु अवसर अँथव दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू॥
तस उतपातु तात बिधि कीन्हा। मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा॥

दो०—राज काज सब लाज पति, धरम धरनि धन धाम।
गुर प्रभाउ पालिहिं सबहिं, भल होइहि परिनाम॥८१॥

सहित समाज तुम्हार हमारा। घर बन गुर प्रसाद रखवारा॥
मातु पिता गुर स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू॥
साधक एक सकल सिधि देनी। कीरति सुगति भूतिमय बेनी॥
सो बिचारि सहि संकट भारी। करहु प्रजा परिवारु सुखारी॥
बाँटी बिपति सबहि मोहि भाई। तुम्हहिं अवधि भरि बड़ि कठिनाई॥
जानि तुम्हहि मृदु कहउँ कठोरा। कुसमयँ तात न अनुचित मोरा॥
होहिं कुठायँ सुबंध सहाये। ओड़िअहि हाथ असनिहुँ के घाये॥

दो०—सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिबु होइ।
तुलसी प्रीति की रीति सुनि, सुकबि सराहहिं सोइ॥८२॥

सभा सकल सुनि रघुबर बानी। प्रेम पयोधि अमिअ जनु सानी॥
सिथिल समाजु सनेह समाधी। देखि सदा चुप सारद साधी॥
भरतहि भएउ परम संतोषू। सनमुख स्वामि बिमुख दुख दोषू॥
मुखु प्रसन्न मन मिटा बिषादू। भा जनु गूंगेहि गिरा प्रसादू॥
कीन्हि सप्रेम प्रनामु बहोरी। बोले पानि पंकरुह जोरी॥
नाथ भएउ सुखु साथ गए को। लहेउँ लाहु जग जनमु भए को॥
अब कृपाल जस आयेसु होई। करऊं सीस धरि सादर सोई॥
सो अवलंब देउ मोहि देई। अवधि पारु पावउं जेहि सेई॥

दो०—देव देव अभिषेक हित, गुर अनुसासनु पाइ।
आनेउँ सब तीरथ सलिलु, तेहि कहँ काह रजाइ॥८३॥

एकु मनोरथु बड़ मन माहीं। सभय सकोच जात कहि नाहीं॥
कहहु तात प्रभु आयसु पाई। बोले बानि सनेह सुहाई॥
चित्रकूट मुनिथल तीरथ वन। खग मृग सर सरि निर्झर गिरिगन॥
प्रभु पद अंकित अवनि बिसेषी। आयेसु होइ त आवउँ देखी॥
अवसि अत्रि आयेसु सिर धरहू। तात बिगत भय कानन चरहू॥
मुनि प्रसादु बनु मंगलदाता। पावन परम सुहावन भ्राता॥
रिषिनायकु जहँ आयेसु देहीं। राखेहु तीरथजलु थल तेहीं॥
सुनि प्रभु बचन भरत सुखु पावा। मुनि पद कमल मुदित सिरु नावा॥

दो०—भरत राम संवादु सुनि, सकल सुमंगल मूल।
सुर स्वारथी सराहि कुल, बरषत सुरतरु फूल॥८४॥

धन्य भरत जय राम गोसाईं। कहत देव हरषत बरिआईं॥
मुनि मिथिलेस सभाँ सब काहू। भरत बचन सुनि भएउ उछाहू॥
भरत राम गुन ग्राम सनेहू। पुलकि प्रसंसत राउ बिदेहू॥
सेवक स्वामि सुभाउ सुहावन। नेमु पेमु अति पावन पावन॥
मति अनुसार सराहन लागे। सचिव सभासद सब अनुरागे॥
सुनि सुनि राम भरत संवादू। दुहुँ समाज हियँ हरषु बिषादू॥
राममातु दुख सुख सम जानी। कहि गुन राम प्रबोधी रानी॥
एक कहहिं रघुबीर बड़ाई। एक सराहत भरत भलाई॥

दो०—अत्रि कहेउ तब भरत सन, सैल समीप सुकूप।
राखिअ तीरथ तोय तहँ, पावन अमिअ अनूप॥८५॥

भरत अत्रि अनुसासन पाई। जल भाजन सब दिए चलाई॥
सानुज आपु अत्रि मुनि साधू। सहित गए जहँ कूप अगाधू॥
पावन पाथ पुन्य थल राखा। प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाषा॥
तात अनादि सिद्ध थल एहू। लोपेउ काल बिदित नहिं केहू॥

तब सेवकन्ह सरस थलु देखा। कीन्ह सुजल हित कूप बिसेषा।।
बिधि बस भएउ बिस्व उपकारू। सुगम अगम अति धरम बिचारू।।
भरतकूप अब कहिहहिं लोगा। अति तीरथ पावन जल जोगा।।
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी। होइहहिं बिमल करम मन बानी।।

दो०—कहत कूप महिमा सकल, गए जहां रघुराउ।
अत्रि सुनाएउ रघुबरहिं, तीरथ पुन्य प्रभाउ।।८६।।

कहत धरम इतिहास सप्रीती। भएउ भोरु निसि सो सुख बीती।।
नित्य निबाहि भरतु दोउ भाई। राम अत्रि गुर आयेसु पाई।।
सहित समाज साज सब सादें। चले रामबन अटन पयादें।।
कोमल चरन चलत बिनु पनहीं। भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं।।
कुस कंटक काँकरी कुराई। कटु कठोर कुबस्तु दुराई।।
महि मंजुल मृदु मारग कीन्हे। बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हे।।
सुमन बरषि सुर घन करि छाहीं। बिटप फूलि फलि तृन मृदुताहीं।।
मृग बिलोकि खग बोलि सेबानी। सेवहिं सकल राम प्रिय जानी।।

दो०—सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु, राम कहत जमुहात।
राम प्रान प्रिय भरत कहुँ, येह न होइ बड़ि बात।।८७।।

येहि बिधि भरतु फिरत बन माहीं। नेम प्रेमु लखि मुनि सकुचाहीं।।
पुन्य जलास्रय भूमि बिभागा। खग मृग तृन गिरि बन बागा।।
चारु बिचित्र पवित्र बिसेषी। बूझत भरतु दिव्य सबु देखी।।
सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ। हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ।।
कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। कतहुँ बिलोकत मन अरिमाना।।
कतहुँ बैठि मुनि आयेसु पाई। सुमिरत सीय सहित दोउ भाई।।
देखि सुभाउ सनेहु सुसेवा। देहिं असीस मुदित बनदेवा।।
फिरहिं गएँ दिनु पहर अढ़ाई। प्रभु पद कमल बिलोकहिं आई।।

दो०—देखे थल तीरथ सकल, भरत पांच दिन माँझ।।
कहत सुनत हरि हर सुजसु, गएउ दिवसु भइ साँझ।।८८।।

भोर न्हाइ सबु जुरा समाजू। भरत भूमिसुर तेरहुतिराजू ॥
भल दिनु आजु जानिमन माहीं। रामु कृपाल कहत सकुचाहीं ॥
गुर नृप भरत सभा अवलोकी। सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी ॥
सील सराहि सभा सब सोची। कहुँ न राम सम स्वामि सकोची ॥
भरत सुजान राम रुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर बिसेषी ॥
करि दंडवत कहत कर जोरी। राखि नाथ सकल रुचि मोरी ॥
मोहि लगि सबहि सहेउ संतापू। बहुत भाँति दुखु पावा आपू ॥
अब गोसाइँ मोहि देउ रजाई। सेवउँ अवध अवधि भरि जाई ॥

दो०—जेहि उपाय पुनि पाय जनु, देखइ दीनदयाल ॥
सो सिख देइअ अवधि लगि, कोसलपाल कृपाल ॥८९॥

पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं। सब सुचि सरस सनेह सगाईं ॥
राउर बदि भल भव दुख दाहू। प्रभु बिनु बादि परमपद लाहू ॥
स्वामि सुजानु जानि सब हीं की। रुचि लालसा रहनि जन जी की ॥
प्रनतपाल पालिहि सब काहू। देउ दुहूँ दिसि ओर निबाहू ॥
अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसे। किए बिचारु न सोच खरो सो ॥
आरति मोर नाथ कर छोहूँ। दुहुँ मिलि कीन्ह ढीठ हठि मोहूँ ॥
येह बड़ दोषु दूरि करि स्वामी। तजि सकोच सिखइअ अनुगामी ॥
भरत बिनय सुनि सबहि प्रसंसा। छीर नीर बिबरन गति हँसा ॥

दो०—दीनबन्धु सुनि बन्धु के, बचन दीन छलहीन।
देस काल अवसरु ससि, बोले रामु प्रवीन ॥९०॥

तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरहि नृपहि घर बन की ॥
माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू। हमहि तुम्हहिं सपनेहुँ न कलेसू ॥
मोर तुम्हार परम पुरुषारथु। स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु ॥
पितु आयेसु पालिअ दुहुँ भाई। लोक बेद भल भूप भलाई ॥
गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहुँ कुमग पग परहि न खालें ॥
अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भर जाई ॥

देसु कोसु पुरजन परिवारू। गुर पद रजहि लोग छरुभारू॥
तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी॥
दो०—मुखिआ मुखु सों चाहिअइ, खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अंग, तुलसी सहित विवेक॥९१॥
राजधरम सरवसु एतनोई। जिमि मन माँह मनोरथ गोई॥
बंधु प्रबोध कीन्ह बहु भाँती। बिनु अधार मन तोषु न साँती॥
भरत सीलु गुर सचिव समाजू। सकुच सनेह विवस रघुराजू॥
प्रभु करि कृपा, पाँवरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही॥
चरनपीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के॥
संपुट भरत सनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के॥
कुल कपाट कर कुलस करम के। बिमल नयन सेवा सुधरम के॥
भरत मुदित अवलंब लहे तें। अस सुख जस सिय रामु रहे तें॥
दो०—माँगेउ विदा प्रनामु करि, राम लिए उर लाइ॥
लोग उचाटे अमरपति, कुटिल कुअवसर पाइ॥९२॥
सो कुचालि सब कहुँ भै नीकी। अवधि आस सम जीवनि जी की॥
नतरु लखन सिय राम वियोगा। हहरि मरत सबु लोग कुरोगा॥
राम कृपा अवरेव सुधारी। विवुध धारि भइ गुनद गोहारी॥
भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो। रामप्रेम रसु कहि न परत सो॥
तन मन वचन उमग अनुरागा। धीर धुरंधर धीरजु त्यागा॥
वारिज लोचन मोचत वारी। देखि दसा सुर सभा दुखारी॥
मुनिगन गुर धुरधीर जनक से। ज्ञान अनल मन कसे कनक से॥
जे विरंचि निरलेप उपाए। पदुमपत्र जिमि जग जल जाए॥
दो०—तेउ बिलोकि रघुवर भरत, प्रीति अनूप अपार।
भए मगन मन तन वचन, सहित बिराग बिचार॥९३॥
जहाँ जनक गुर गति मति भोरी। प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी॥
वरनत रघुवर भरत वियोगू। सुनि कठोर कबि जानिहि लोगू॥

सो सकोचु रसु अकथ सुबानी। समउ सनेहु सुमिरि सकुचानी॥
भेंटि भरतु रघुबर समुझाए। पुनि रिपुदवनु हरषि हियँ राए॥
सेवक सचिव भरत रुख पाई। निज निज काज लगे सब जाई॥
सुनि दारुन दुखु दुहूँ समाजा। लगे चलन घर साजन साजा॥
प्रभु पद पदुम बंदि दोउ भाई। चले सीस धरि राम रजाई॥
मुनि तापस बनदेव निहोरी। सब सनमानि बहोरि बहोरी॥

दो०—लखनहिं भेंटि प्रनामु करि, सिर धरि सिय पद धूरि।
चले सप्रेम असीस सुनि, सकल सुमंगल मूरि॥९४॥

सानुज राम नृपहि सिर नाई। कीन्हि बहुत बिधि बिनय बड़ाई॥
देव दयावस बड़ दुख पाएउ। सहित समाज काननहिं आएउ॥
पुर पगु धारिअ दइ असीसा। कीन्ह धीर धरि गवनु महीसा॥
मुनि महिदेव साधु सनमाने। बिदा किए हरि हर सम जाने॥
सासु समीप गए दोउ भाई। फिरे बंदि पग आसिष पाई॥
कौसिक बामदेव जाबाली। पुरजन परिजन सचिव सुचाली॥
जथाजोगु करि बिनय प्रनामा। बिदा किए सब सानुज रामा॥
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे। सब सनमानि कृपानिधि फेरे॥

दो०—भरतमातु पद बंदि प्रभु, सुचि सनेह मिलि भेंटि।
बिदा कीन्हि सजि पालकी, सकुच सोच सब मेटि॥९५॥

परिजन मातु पितहि मिलि सीता। फिरी प्रानप्रिय प्रेम पुनीता॥
करि प्रनामु भेंटी सब सासू। प्रीति कहत कबि हिय न हुलासू॥
सुनि सिख अभिमत आसिष पाई। रही सीय दुहु प्रीति समाई॥
रघुपति पटु पालकी मँगाई। करि प्रबोधु सब मातु चढ़ाई॥
बार बार हिलि मिलि दुहुँ भाई। सम सनेहँ जननी पहुँचाई॥
साजि बाजि गज बाहन नाना। भूप भरत दल कीन्ह पयाना॥
हृदय रामु सिय लखनु समेता। चले जाहिं सब लोग अचेता॥
बसह बाजि गज पसु हियँ हारें। चले जाहिं परबस मन मारें॥

दो०—गुर गुरतिय पद वंदि प्रभु, सीता लखन समेत।
फिरे हरष विसमय सहित, आए परननिकेत ॥९६॥

विदा कीन्ह सनमानि निषादू। चलेउ हृदयँ वड़ विरह विषादू ॥
कोल किरात भिल्ल वनचारी। फेरे फिरे जोहारि जोहारी ॥
प्रभु सिय लखन वैठि बट छाहीं। प्रिय परिजन वियोग विलखाहीं ॥
भरत सनेहु सुभाउ सुबानी। प्रिया अनुज सन कहत वखानी ॥
प्रीति प्रतीति वचन मन करनी। श्रीमुख राम प्रेमवस वरनी ॥
तेहि अवसर खग मृग जल मीना। चित्रकूट चर अचर मलीना ॥
विवुध विलोकि दसा रघुवर की। बरषि सुमन कहि गति घर घर की ॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह भरोसो। चले मुदित मन डरु न खरोसो ॥

दो०—सानुज सीय समेत प्रभु, राजत परनकुटीर।
भगति ज्ञानु वैराग्य जनु, सोहत धरें सरीर ॥९७॥

गीतावली

(१)

मेरे बालक कैसे धौं मग निबहहिंगे ?
भूख, पियास, सीत स्रम सकुचनि क्यों कौसिकहि कहहिंगे ?
को भोर ही उवटि अन्हवैहै, काढ़ि कलेऊ दैहै ?
को भूषन पहिराइ निछावरि करि लोचन-सुख लैहै ?
नयन निमेषनि ज्यों जोगवैं नित पितु परिजन महतारी ।
ते पठए ऋषि साथ निसाचर मारन, मख रखवारी ॥
सुन्दर सुठि सुकुमार सुकोमल काकपच्छ धर दोऊ ।
तुलसी निरखि हरषि उर लैहौं निधि ह्वै है दिन सोऊ ॥

(२)

ऋषि नृप-सीस ठगौरी सी डारी ।
कुलगुरु, सचिव, निपुन नेवनि अवरेब न समुझि सुधारी ॥
सिरिस-सुमन-सुकुमार कुँवर दोउ, सूर सरोष सुरारी ।
पठए निबहि सहाय पयादेहि केलि-बान-धनुधारी ॥
अति सनेह-कातरि माता कहै, सुनि सखि ! बचन दुखारी ।
वादि बीर-जननी-जीवन जग, छत्रि जाति गति भारी ॥
जो कहिहै फिरे राम लखन घर करि मुनि मख रखवारी ।
सो तुलसी प्रिय मोहिं लागिहै ज्यों सुभाय सुत चारी ॥

(३)

जबतें लै मुनि संग सिधाए ।
राम लखन के समाचार सखि ! तबते कछुअ न पाए ॥

बिनु पानही गमन, फल भोजन, भूमि सयन तरुछाहीं ।
सर सरिता जलपान, सिसुन के संग सुसेवक नाहीं ।।
कौसिक परम कृपाल परम हित, समरथ, सुखद, सुचाली ।
बालक सुठि सुकुमार, संकोची समुझि सोच मोहिं आली ।।
बचन सप्रेम सुमित्रा के सुनि सब सनेह बस रानी ।
तुलसी आइ भरत तेहि औसर कही सुमंगल बानी ।।

(४)

आजु को भोर और सो, माई!
सुनौं न द्वार वेद वंदी धुनि गुनि गन गिरा सोहाई ।।
निज निज सुन्दर पति सदननि तें रूप-सील-छवि छाईं ।
लेन असीस सीय आगे करि मोपैं सुतवधू न आईं ।।
बूझी हौं न विहँसि मेरे रघुवर 'कहाँ री! सुमित्रामाता?"
तुलसी मनहुँ महासुख मेरो देखि न सकेउ विधाता ।।

(५)

जननी निरखत बान धनुहियाँ ।
बार बार उन-नैननि लावति प्रभु जू की ललित पनहियाँ ।।
कबहुँ प्रथम ज्यों जाइ जगावति कहि प्रिय वचन सवारे ।
"उठहुँ तात! बलि मातु बदन पर, अनुज सखा सब द्वारे" ।।
कबहुँ कहति यों बड़ी बार भइ, जाहु भूप पहँ, भैया ।
बन्धु बोलि जेंइय, जो भावै गई निछावरि मैया ।।
कबहुँ समुझि बन-गवन राम को रहि चकि चित्र लिखी सी ।
तुलसीदास वह समय कहे तें लागति प्रीति सिखी सी ।।

(६)

माई री! मोहिं कोउ न समुझावै ।
राम गमन साँचो किधौं सपनो, मन परतीत न आवै ।।

लगेइ रहत मेरे नयननि आगे राम लखन अरु सीता।
तदपि न मिटत दाह या उरको, विधि जो भयो विपरीता॥
दुख न रहै रघुपतिहिं विलोकत, तनु न रहै विनु देखे।
करत न प्रान पयान सुनहु सखि! अरुझि परी यही लेखे॥
कौसल्या के विरह-वचन सुनि रोइ उठीं सब रानी।
तुलसीदास रघुवीर-विरह की पीर न जाति वखानी॥

(७)

जव जव भवन विलोकति सूनो।
तव तव विकल होति कौसल्या दिन दिन प्रति दुख दूनो॥
सुमिरत वाल विनोद राम के सुन्दर मुनिमनहारी।
होत हृदय अति सूल समुझि पद पंकज अजिर विहारी॥
को अव प्रात कलेऊ माँगति रूठि चलैगो माई।
स्याम-तामरस नैन स्रवत जल काहि लेउँ उर लाई॥
जीवौं तो विपति सहौं निसि-वासर मरौं तो मन पछितायो।
चलत विपिन भरि नयन राम को वदन न देखन पायो॥
तुलसिदास यह दसा दुसह अति, दारुन विरह घनेरा।
दूरि करै को भूरि कृपा विनु सोक जनित रुज मेरो॥

(८)

मेरो यह अभिलाषु विधाता!
कव पुरवै सखि! सानुकूल ह्वै हरि सेवक सुखदाता?
सीता सहित कुसल कोसलपुर आवत हैं सुत दोऊ।
स्रवन-सुधासम वचन सखी! कव आइ कहैगो कोऊ?
सुनि संदेस प्रेम-परिपूरन संभ्रम उठि धावौंगी?
वदन विलोकि रोकि लोचन-जल हरषि हिये लावौंगी?
जनक सुता कव 'सासु' कहै मोहि, राम लखन कहैं 'मैया'?
बाहु जोरि कव अजिर चलहिंगे, स्याम गौर दोउ भैया?

तुलसिदास यहि भाँति मनोरथ करत प्रीति अति वाढ़ी।
थकित भई उर आनि राम छवि मनहुँ चित्र लिखि काढ़ी।।

(९)

कैकयी करी धौं चतुराई कौन?

राम लखन सिय बनहिं पठाए, पति पठए सुर भौन।।
कहा भलो धौं भयो भरत को लगे तरुन तन दौन।
पुरवासिन्ह के नयन नीर बिनु कबहुँ तो देखति हौं न।।
कौसल्या दिन राति बिसूरति बैठि मनहिं मन मौन।
तुलसी उचित न होइ रोइबो प्रान गए संग जौन।।

(१०)

हाथ मींजिबो हाथ रह्यो।

लगी न संग चित्रकूटहु तें ह्याँ कहा जात बह्यो।।
पति सुरपुर, सिय राम लखन बन, मुनि व्रत भरत गह्यो।
हौं रहि घर मसान-पावक ज्यों मरिबोइ मृतक दह्यो।।
मेरोइ हिय कठोर करिबे कहँ बिधि कहु कुलिस लह्यो।
तुलसी बन पहुँचाइ फिरी सुत, क्यों कुछ परत कह्यो?

(११)

हौं तो समुझि रही अपनो सो।

राम-लखन-सिय को सुख मो कहँ भयो सखी! सपनो सो।।
जिन्हके बिरह विषाद बँटावन खगमृग जीव दुखारी।
मोहिं कहा सजनी समुझावति हौं तिन्हकी महतारी।।
भरत दसा सुनि, सुमिरि भूपगति, देखि दीन पुरवासी।
तुलसी 'राम' कहति हौं सकुचति ह्वै है जग उपहासी।।

(१२)

आली ! हौं इन्हहिं बुझावौं कैसे !
लेत हिये भरि भरि पति को हित, मारत हेतु सुत जैसे ।।
वार वार हिहिनात हेरि उत जो वोले कोउ द्वारे ।
अंग लगाइ लिए वारेतें करुनामय सुत प्यारे ।।
लोचन सजल, सदा सोवत से, खानपान विसराए ।
चितवत चौंकि नाम सुनि, सोचत राम-सुरति उर आए ।।
तुलसी प्रभु के विरह वधिक हठि राजहंस से जोरे ।
ऐसेहु दुखित देखि हौं जीवति रामलखन के घोरे ।।

(१३)

राघौ ! एक वार फिरि आवौ ।
ये वर वाजि विलोकि आपने वहुरो बनहि सिधावौ ।।
ये पय प्याइ पोखि कर-पंकज बार बार चुचकारे ।
क्यों जीवहिं मेरे नाम लाडिले ! ते अव निपट विसारे ।।
भरत सौगुनी सार करत हैं अति प्रिय जानि तिहारे ।
तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे मनहुँ कमल हिम मारे ।।
सुनहु पथिक ! जो रामा मिलहिं वन कहियो मातु संदेसो ।
तुलसी मोहिं और सवहिनतें इन्हको वड़ो अँदेसो ।।

(१४)

सुनि रन घायल लखन परे हैं ।
स्वामिकाज संग्राम सुभट सौं लोहे ललकारि लरे हैं ।।
सुवन - सोक संतोष सुमित्रहि रघुपति - भगति वरे हैं ।
छिन-छिन गात सुखात छिनहिं छिन होत हरे हैं ।।
कपि सौं कहति सुभाय अंव के अंवक अंवु भरे हैं ।
रघुनंदन विनु वंधु कुअवसर जद्यपि धनु दुसरे हैं ।।

'तात! जाहु कपि सग"रिपुदवन उठि कर ज़ोरि खरे हैं ।।
प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु विधिवस सुढर ढरे हैं ।
अंव अनुज गति लखि पवनज भरतादि गलानि गरे हैं ।।
तुलसी सब समुझाइ मातु तेहि समय सचेत करे हैं ।।

(१५)

"बिनय सुनाइबो परि पायँ।
कहौं कहा कपीस तुम्ह सुचि सुमति सुहृद सुभायँ ।।
स्वामि संकट हेतु हौं, जड़ जननी जनम्यो जायँ ।।
समौ पाइ कहाइ सेवक घट्वो तौ न सहाय" ।।
कहत सिथिल सनेह भो जनु धीर घायल घाय ।।
भरत गति लखि मातु सब रहि ज्यो गुड़ी विनु बाय ।।
"भेंट कहि कहिबो, कह्यो यों कठिन मानस माय ।।
लाल ! लोने लखन सहित सुललित लागत नायँ" ।।
देखि वन्धु-सनेह अंबसुभाउ, लखन कुठायँ ।।
तपत तुलसी तरनि-त्रासकु एहि नए तिहुँ ताय ।।

(१६)

अवधि आजु किधौं औरो दिन द्वै हैं ?
चढ़ि धौरहर बिलोकि दखिन दिसि बूझि धौं कहाँ ते आगवे हैं ।।
बहुरि बिचारि हारि हिय सोचति, पुलकगात लोचन चले च्वै हैं ।।
निज बासरनि वरष पुरवैगो विधि मेरे तहाँ करम कठिन कृति कैहैं ।।
बन रघुबीर, मातु गृह जीवति, निलज प्रान सुनि सुनि सुखस्वै हैं ।।
तुलसीदास मो सी कठोरचि कुलिस साल भंजन को ह्वै हैं ।।

(१७)

आली ! रामलखन कित ह्वै हैं ?
चित्रकूट तज्यौ तब ते न कही सुधि बधू समेत कुसल सुत ह्वै हैं ।।

वारि बयारि विषम रितु आतप सहि बिनु बसन भूमितल स्वैहैं।
कंद-मूल-फल-फल-असन बन, भोजन समय मिलत कैसे ह्वैहैं॥
जिन्हहिं बिलोकि सोचिहैं लता द्रुम खगमृग मुनि लोचन जलच्वैहैं।
तुलसीदास तिन्हको जननी हौं, मो सों निठुर-चित औरो कहुँ ह्वै हैं॥

(१८)

बैठि सगुन मनावति माता।
कब अइहैं मेरे बाल कुसल घर कहहु काग फुरि बाता॥
दूध भात की दोनी दैहौं सोने चोंच मढ़ैहौं॥
जब सिया सहित बिलोकि नयन भरि राम लखन उर लैहौं॥
अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी।
गनक बोलाइ पाँय परि पूछति प्रेममगन मृदुबानि॥
तेहि अवसर कोउ भरत निकट तें समाचार लै आयो।
प्रभु-आगमन सुनत तुलसी मनो मीन मरत जल पायो॥

(१९)

छेमकरी! बलि बोलि सुबानी।
कुसल छेम सिय-राम लखन कब अइहैं अंब? अवध रजधानी॥
ससि-मुखि, कुंकुम-बरनि, सुलोचनि, मोचनि-सोचनि बेद बखानी।
देवि! दया करि देहि दरस-फल जोरि पानि बिनवति सब रानी॥
सुनि सनेह मय बचन निकट ह्वै मंजुल मंडल कै मेड़रानी।
सुभ मंगल आनंद गगन-धुनि अकनि अकनि उर जरनि जुड़ानी॥
फरकन लगे सुअंग बिदिसि-दिसि, मन प्रसन्न दुख-दसा सिरानी।
करहिं प्रनाम सप्रेम पुलकि तनु मानि बिबिध बलि सगुन-सयानी॥
तेहि अवसर हनुमान भरत सों कहीं सकल कल्यान-कहानी।
तुलसिदास मोद [illegible] सजीवनि विषम वियोग व्यथा बड़ि मानी।

कवितावली

(१)

वासव बरुन विधिवन तें सुहावनो
दसानन को कानन वसंत को सिंगारु सो ।
सभय पुराने पात परत डरत वात,
पालत ललात रतिमार को विहारु सो ।।
देखे वर बापिका तड़ाग बाग को बनाव
राग वस भो विरागी पवनकुमारु सो ।
सीय की दसा विलोकि विटप असोकतर
तुलसी विलोक्यो सो तिलोक सोक-सारु सो ।।

(२)

माली मेघनाथ वनपाल विकराल भट
नीकें सब काल सींचैं सुधासार-नीर को ।
मेघनाद तें दुलारो प्रान तें पियारो बाग
अति अनुराग जिय जातुधान धीर को ।।
तुलसी को जानि सुनि, सीय को दरस पाइ
पैठो बाटिका बजाइ बल रघुबीर को ।
विद्यमान देखत दसानन को कानन सो
तहस - नहस कियो साहसी समीर को ।।

(३)

वसन बटोरि बोरि बोरि तेल तमीचर
खोरि खोरि धाइ आइ बाँधत लंगूर हैं ।

तैसो कपि कौतुकी डरात ढीलो गात कै कै,
लात के अघात सहे जी में कहै 'कूर हैं' ॥
बाल किलकारी कै कै, तारी दै दै गारी देत,
पाछे लागे बाजत निसान ढोर तूर हैं ।
बालधी बढ़न लागी, ठौर ठौर दीन्हीं आगी,
विंध की दवारि कैधौं कोटिसत सूर हैं ॥

(४)

लाइ लाइ आगि भागे बाल जाल जहाँ-तहाँ,
लघु ह्वै निवुकि गिरिमेरु तें बिसाल भो ।
कौतुकी कपीस कूदि कनक कगूरा चढ़ि,
रावन भवन जाइ ठाढ़ो तेहिकाल भो ॥
तुलसी बिराज्यो व्योम वालधी पसारि भारी,
देखे हहरात भट काल तें कराल भो ।
तेज को निधान मानो कोटि कृसानु भानु
नख विकराल, मुख तैसो रिस लाल भो ॥

(५)

बालधी विसाल बिकराल ज्वाल जाल मानौं
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है ।
कैधौं व्योम-वीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
वीररस वीर तरवारि सी उधारी है ॥
तुलसी सुरेस चाप कैधौं दामिनी कलाप,
कैधौं चली मेरु ते कृसानु सरि भारी है ।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं
"कानन उजार्‌यो अब नगर प्रजारी है" ॥

(६)

जहाँ तहाँ वुवुक विलोकि वुवुकारी देत,
"जरत निकेत धाओ धाओ लागी आगि रे!
कहाँ तात, मात, भ्रात, भगिनी, भामिनी, भागी,
छोटे छोटे छोहरा अभागे भोरे भागि रे।।
हाथो छोरो, घोरा छोरो, महिष वृषभ छोरो,
छेरी छोरो, सोवै सो जगावो जागि जागि रे!"
तुलसी विलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं
"बार बार कह्यो पिय कपि सों न लागि रे!"

(७)

देखि ज्वाल बाल, हाहाकार दसकंध सुनि
कह्यो "धरो! धरो!" धाए वीर बलवान हैं।
लिए सूल, सेल, पास, परिघ, प्रचंड दंड,
भाजन सनीर, धीर धरे धनुबान हैं।।
तुलसी समिध सौंज लंक-जज्ञकुंड लखि,
जातुधान पूंगीफल, जव, तिलधान हैं।
स्रुवा सो लँगूल बलमूल प्रतिकूल हवि
स्वाहा महा हाँकि हाँकि हुनै हनुमान हैं।।

(८)

गाज्यो कपि गाज ज्यों, विराज्यो ज्वाल-जालजुत,
भाजे धीर वीर, अकुलाइ उठो रावनो।
"धाओ, धाओ, धरो!" सुनि धाए जातुधान धारि
वारि धारा उलदैं जलद ज्यों न सावनो।।
लपट झपट झहराने, हहराने वात,
भहराने भट, पर्‍यो प्रबल परावनो।

ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि,
"नाथ न चलैगो वल अनल भयावनो" ॥

(९)

वड़ो विकराल वेप देखि, सुनि सिंहनाद,
उठ्यो मेघनाद सविपाद कहै रावनो ।
वेग जीत्यो मारुत, प्रताप मारतंड कोटि,
कालउ करालता, वड़ाई जीत्यो वावनो ॥
तुलसी सयाने जातुधान पछिताने मन,
"जाको ऐसो दूत सो तो साहव अवै आवनो ।
काहे की कुसल रोसे राम वामदेव हू के,
विपम वली सों वादि वैर को वढ़ावनो ॥

(१०)

"पानी, पानी, पानी" सव रानी अकुलानी कहैं,
जाति हैं परानी गति जानि गजचालि है ।
वसन विसारैं, मनि भूपन सँभारत न,
आनन सुखाने कहैं क्यों हू कोऊ पालि है ॥
तुलसी मँदोवै मींजि हाथ धुनि माथ कहै
"काहू कान कियो न मैं कह्यो केतो कालि है" ।
वापुरो विभिषन पुकारि वार वार कह्यो,
"वानर वड़ी वलाइ घने घर घालिहै" ॥

(११)

"कानन उजार्‌यो तौ उजार्‌यो, न विगारयो कछू
वानर विचारो वाँधि आन्यो हठि हार सों ।
निपट निडर देखि काहू न लख्यो विसेपि,
दीन्हों ना छुड़ाइ कहि कुल के कुठार सों ॥

छोटे औ बड़ेरे मेरे पूतऊ अनेरे सब,
साँपनि सों खेलैं, मेलैं गरे छुराधार सों ।"
तुलसी मँदोवै रोइ रोइ के विगोवै आपु,
"वारवार कह्यो मैं पुकारि दाढ़ीजार सों ।।"

(१२)

रानी अकुलानी सब डाढ़त परानी जाहिं,
सकैं ना विलोकि वेष केसरी कुमार को ।
मींजि मींजि हाथ, धुनै माथ दसमाथ तिय,
तुलसी तिलौ न भयो वाहिर अगार को ।।
सब असवाव डाढ़ो, मैं न काढ़ो तैं न काढ़ो,
जिय की परी सँभार, सहन भँडार को ?"
खीझति मँदोवै सविषाद देखि मेघनाद,
"वयो लुनियत सब याही दाढ़ीजार को ।।"

(१३)

रावन की रानी जातुधानी विलखानी कहैं,
"हा हा ! कोऊ कहै वीस वाहु दसमाथ सों ।
काहे मेघनाद ! काहे काहे रे महोदर ! तू
धीरज न देत, लाइ लेत क्यों न हाथ सों ?
काहे अतिकाय ! काहे काहे रे अकंपन !
अभागे तिय त्यागे भोंड़े भागे जात साथ सों ?
तुलसी बढ़ाइ वादि साल तें विसाल वाहैं,
याही वल, वालिसो ! विरोध रघुनाथ सों ?"

(१४)

हाट, वाट, कोट, ओट, अट्टनि, अगार, पौरि,
खोरि खोरि दौरि दौरि दीन्ही अति आगि है ।

आरत पुकारत, संभारत न कोऊ काहू,
व्याकुल जहाँ सो तहाँ लोग चले भागि है ।।
वालधी फिरावै वार वार झहरावै, झरैं—
बूंदिया लंक पघिलाइ पागि पागि है ।
तुलसी बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं,
"चित्रहू के कपि सों निसाचर न लागिहै ।।"

(१५)

"लागि लागि, आगि", भागि भागि चले जहाँ-तहाँ
धीय को न माय, वाप पूत न संभारहीं ।
छूटे बार, वसन उघारे, धूम धुंध अंध,
कहैं वारे-बूढ़े "वारि, वारि" बार-वारहीं ।।
हय हिहिनात भागे जात, घहरात गज,
भारी भीर ठेलि-पेलि रौंदि खौंदि डारहीं ।
नाम लै चिलात, विललात अकुलात अति,
"तात! तात! तौंसियत, झौंसियत झारहीं" ।।

(१६)

लपट कराल ज्वाल जाल माल दहूँ दिसि,
धूम अकुलाने पहिचानै कौन काहि रे?
पानी को ललात, विललात, जरे गात जात,
"परे पाइमाल जात भ्रात! तू निवाहि रे!'
"प्रिया तू पराहि" "! नाथ! नाथ! तू पराहि!"
"वाप! वाप! तू पराहि!" "पूत! पूत! तू पराहि रे!"
तुलसी बिलोकि लोग व्याकुल विहाल कहैं,
'लेहि दससीस अब बीस चख चाहि रे ।।"

(१७)

वीथिका वजार प्रति, अटनि-अगार प्रति,
पँवरि-पगार प्रति वानर विलोकिए।
अध उर्द्ध बानर विदिसि दिसि वानर है,
मानहुँ रह्यो हैं भरि वानर तिलोकिए।।
मूँदे आँखि हीय में, उघारे आँख आगे ठाढ़ो,
धाइ जाइ जहाँ तहाँ और कोऊ को किए?
"लेहु अब लेहु तव कोऊ न सिखाओ मान्यो,
सोइ सतराइ जाइ जाहि जाहि रोकिए"।।

(१८)

एक करै धौज, एक कहै, "काढ़ो साँज एक
औंजि पानी पीके कहैं "वनत न आवनो।
एक परे गाढ़े, एक डाढ़त ही काढ़े एक,
देखत हैं ठाढ़े कहैं, "पावक भयावनो"।।
तुलसी कहत एक, नीके साथ लाए कपि,
अजहूँ न छाँड़ै वाल गाल को वजावनो।
धाओ रे! वुझाओ रे! कि वावरे हौ रावरे या
औरै आगि लागी, न वुझावै सिंधु सावनो।।"

(१९)

कोपि दसकंध तव प्रलय-पयोद वोले,
रावन-रजाइ धाइ आए जूथ जोरि कै।
कह्यो लंकपति, "लंक वरत वुताओ वेगि,
वानर वहाइ मारौ महा वारि वोरि कै।।"
"भले नाथ!" नाइ माथ चले पाथप्रदनाथ,
वरषैं मुसलधार वार-वार घोरि कै।

जीवन तें जागी आगी चपरि चौगुनी लागी,
तुलसी भभरि मेघ भागे मुख मोरि कैं ॥

(२०)

इहाँ ज्वाल जरे गात, उहाँ ग्लानि गरे गात,
सूखे सकुचात सब कहत पुकारि हैं ।
"जुग षट भानु देखे, प्रलय-कृसानु देखे,
सेष-मुख अनल बिलोके बार बार हैं ॥
तुलसी सुन्यो न कान सलिल सर्पी समान,
अति अचरज कियो केसरी कुमार हैं ।"
बारिद बचन सुनि धुनैं सीस सचिवन्ह,
कहैं, "दससीस-ईस-बामता-बिकार हैं ॥"

(२१)

"पावक, पवन, पानी, भानु, हिमवान, जम,
काल, लोकपाल, मेरे डर डाँवाडोल हैं ।
साहिब महेश सदा, संकित रमेस मोहिं,
महातप साहस बिरंचि लीन्हे मोल हैं ॥
तुलसी तिलोक आजु दुजो न बिराजै राजा,
बाजे बाजे राजनि के बेटा बेटी ओल हैं ।
को हैं ईस नाम ? को जो बाम होत मोहू सों को ?
मालवान ! राबरे के बावरे से बोल हैं ॥"

(२२)

"भूमि महिपाल, ब्याल पालक पताल,
नाक पाल, लोक पाल जेते सुभट-समाज हैं ।
कहै मालवान जातुधान पति ! राबरो को,
मनहूं अकाज आनै ऐसो कौन आज है ?

रामकोह-पावक, समीर-सीय-स्वास, कीस–
ईस-बामता विलोकु बानर को ब्याज है।
जारत प्रचारि फेरि फेरि सो निसंक लंक,
जहाँ बाँको बीर तो सो सूर सिरताज है॥

(२३)

पान, पकवान, विधि नाना को सँधानो सीधो,
बिबिध बिधान धान बरत बखार हीं।
कनक किरीट कोटि, पलँग, पेटारे पीठ,
काढ़त कहार सब जरे मरे भार हीं॥
प्रबल अनल बाढ़ै, जहाँ काढ़ै तहाँ डाढ़ै,
झपट लपट भरे भवन भँडार हीं।
तुलसी अगार, न पगार, न बजार बच्यो,
हाथी हथसार जरे, घोरे घोरसार हीं॥

(२४)

हाट बाट हाटक पिघिल चल्यो घी सो घनो,
कनक-कराही लंक तलफति तायसों।
नाना पकवान जातुधान बलवान सब,
पागि पागि ढेरी कीन्ही भलीभाँति भाय सों॥
पाहुने कृसानु पवमान सों परोसो हनु-
मान सनमानि कै जेंवाए चितचाय सों।
तुलसी निहारि अरिनारि दै दै गारि कहैं,
"बावरे सुरारि! बैर कीन्हो रामराय सों॥"

(२५)

रावन सो राजरोग बाढ़त बिराट उर
दिन दिन बिकल सकल सुख राँक सो।

नाना उपचार करि हारे सुर सिद्ध मुनि,
होत न बिसोक ओत पावै न मनाक सो ।।
राम की रजाय तें रसायनी समीरसूनु
उतरि पयोधिपार सोधि सरवाक सो ।
जातुधान वुट, पुटपाक लंक जातरूप
रतन जतन जारि कियो है मृगांक सो ।।

(२६)

दिवस छ-सात जात जानिबे न, मातु धरु
धीर अरि अंत की अवधि रही थोरि कै ।
बारिधि बँधाय सेतु अइहैं भानुकुल केतु
सानुज कुसल कपि कटक बटोरि कै ।।
वचन बिनीत कहि सीता को प्रबोध करि
तुलसी त्रिकूट चढ़ि कहत डफोरि कै ।
"जै जै जानकीस दससीस करि केसरी !"
कपीस कूद्यो बात-घात बारिधि हिलोर कै ।।

(२७)

"साहसी समीर सूनु नीरनिधि लंघि लखि
लंक सिद्धि-पीठ निसि जागो है मसान सो ।
तुलसी बिलोकि महासाहस प्रसन्न भई
देवी सिय साहिबी दियो है बरदान सो ।।
बाटिका उजारि, अच्छ धरि मारि, जारि गढ़
भानुकुल भानु को प्रतापभानु भानु सो ।
करत बिसोक लोक कोकनद कोक कपि"
कहै जामवंत, "आयो आयो हनुमान सो ।।"

(२८)

गगन निहारि, किलकारी भारी सुनि हनुमान
मान पहिचानि भए सानंद सचेत हैं।
बूड़त जहाज बच्यो पथिक समाज मानो
आजु जाए जानि सब अंकमाल देत हैं।।
"जै जै जानकीस, जै जै लखन कपीस", कहि
कुदैं कपि कौतुकी, नचत रेत-रेत हैं।
अंगद, मयंद, नलु नील बलसील महा
बालधी फिरावैं, मुख नाना गति लेत हैं।।

(२९)

आयो हनुमान प्रान हेतु, अंकमाल देत,
लेत पग धूरि एक चूमत लंगूल हैं।
एक बूझैं बार बार सीय-समाचार कहे,
पवनकुमार के विगत स्रमसूल हैं।।
एक भूखे जानि आगे आनें कंद, मूल, फल
एक पूजे बाहुबल तोरि मूल फूल हैं।
एक कहैं तुलसी, "सकल सिधि ताके जाके
कृपानाथ नाथ सीतानाथ अनुकूल हैं।।"

(३०)

सीय की सनेह, सील, कथा तथा लंक की
चले कहत जाय सों, सिरानो पथ छिन में।
कह्यो जुवराज बोलि बानर-समाज "आजु
खाहु फल" सुनि पेलि बैठे मधुवन में।।
मारे बागबान, ते पुकारत देवान गे,
"उजारे बाग अंगद," दिखाए घाय तन में।
कहैं कपिराज, "करि आए काज कीस
तुलसीस की सपथ महामोद मेरे मन में।।

विनय-पत्रिका

(१)

राम राम रटु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा।
राम नाम नव नेह मेह को मन हठि होति पपीहा।।
सब साधन-फल कूप-सरित-सर-सागर-सलिल निरासा।
राम नाम-रति स्वाति-सुधा सुभ सीकर प्रेम-पियासा।।
गरजि तरजि पाषान बरषि पबि प्रीति परखि जिय जानै।
अधिक अधिक अनुराग उमँग उर पर परमिति पहिचानै।।
राम नाम गति, राम नाम मति, राम नाम अनुरागी।
ह्वै गए, हैं, जे होहिंगे आगे तेइ गनियत बड़भागी।।
एक अंग मग अगम गवनि करि विलमु छिन-छिन छाहैं।
तुलसी हित अपनो अपनी दिहि निरुपधि नेम निवाहैं।।

(२)

राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम,
काम यहै नाम द्वै हौं कबहूँ कहत हौं।
रोटी लूगा नीके राखैं, आगे हू को बेद भाषै
भलो ह्वै है तेरो, ताते आनँद लहत हौं।।
बाँधो हौं काम जड़ गरम गूढ़ निगड़
सुनत दुसह हौं, तो साँसति सहत हौं।।
आरत - अनाथ - नाथ कोसलपाल कृपाल
लीन्हों छीनि दीन देख्यो दुरित दहत हौं।।
बूझ्यो ज्योंही, कह्यो "मैं हूँ, चेरी ह्वै हौं रावरो जू,
मेरो कोऊ कहूँ नाहिं, चरन गहत हौं।"

मीजों गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि,
सेवक सुखद सदा बिरद बहत हौं॥
लोग कहैं पोचु, सो न सोचु न संकोचु मेरे,
व्याह न बरेखी जाति पाँति न चहत हौं।
तुलसी अकाज काज राम ही के रीझे खीझे,
प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हौं॥

(३)

तु दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौ भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसों।
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसों॥
ब्रह्म तू, हौं जीव, तुही ठाकुर हौं चेरी।
तात, मात, गुरु, सखा, तू सब विधि हितु मेरो॥
तोहिं मोहिं नाते अनेक मानिये जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु! चरन-सरन पावै॥

(४)

दीनबन्धु, सुख सिन्धु, कृपाकर कारुनीक रघुराई।
सुनहु नाथ! मन जरत त्रिविध ज्वर, करत फिरत बौराई॥
कबहुँ जोगरत, भोग निरत सठ, हठ वियोग बस होई।
कबहुँ मोहबस द्रोह करत बहु, कबहुँ दया अति सोई॥
कबहुँ दीन मति हीन रंकतर, कबहुँ भूप अभिमानी।
कबहुँ मूढ़ पंडित विडंबरत, कबहुँ धरमरत ज्ञानी॥
कबहुँ देख जग धनमय, रिपुमय, कबहुँ नारिमय आसै।
संसृति-सन्निपात दारुन दुख बिनु हरि कृपा न नासै॥
संजम, जप, तप, नेम, धरम ब्रत, बहु भेषज समुदाई।
तुलसिदास भव रोग राम पद-प्रेम हीन नहिं जाई॥

(५)

तौं तू पछितैहै मन मींजि हाथ।
भयो सुगम तो को अमर-अगम तनु, समुझि धौं कत खोवत अकाथ ।।
सुख-साधन हरि विमुख वृथा जैसे श्रम-फल घृत हित मथे पाथ ।
यह बिचारि तजि कुपथ कुसंगति चलु सुपंथ मिलि भले साथ ।।
देखु राम सेवक, सुनु कीरति, रटहि नाम, करि गान गाथ ।
हृदय आनु धनु बान-पानि प्रभु लसे मुनिपट कटि कसे भाथ ।।
तुलसिदास परिहरि प्रपंच सब नाउ राम पद कमल माथ ।
जनि डरपहि तो से अनेक खल अपनाए जानकीनाथ ।।

(६)

सुनु मन मूढ़ ! सिखावन मेरो।
हरिपद - विमुख लह्यो न काहू सुख सठ यह समुझि सवेरो ।।
विछुरे ससि रवि, मन नयननितें पावत दुख वहुतेरो ।
मात भ्रमित निसि दिवस गगन महँ तहँ रिपु राहु बड़ेरो ।।
यद्यपि अति पुनीत सुरसरिता तिहुँ पुर सुजस घनेरो ।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित वहवो ताहू केरो ।।
छुटै न विपति भजे विनु रघुपति श्रुति संदेह निवेरो ।
तुलसिदास सव आस छाड़ि करि होहि राम को चेरो ।।

(७)

कवहूँ मन बिस्राम न मान्यो।
निसि दिन भ्रमत बिसारि सहज सुख जहँ तहँ इंद्रिन तान्यो ।।
जदपि विषय सँग सहे दुसह दुख विषय जाल अरुझान्यो ।।
तदपि न तजत मूढ़ ममता बस, जानत हूँ नहिं जान्यो ।।
जनम अनेक किए नाना विधि कमर-कीच चित सान्यो ।।
होइ न बिमल बिबेक-नीर बिनु, बेद पुरान बखान्यो ।।

निज हित, नाथ, पिता, गुरु हरि सों हरषि हृदय नहिं आन्यो।
तुलसिदास कव तृषा जाइ, सर खनतहिं जनम सिरान्यो॥

(८)

मेरो मन, हरि! हठ न तजै।
निसि दिन नाथ! देउँ सिख वहु विधि, करत, सुभाव निजै।
ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै।
ह्वै अनुकूल विसारि सूल सठ पुनि खल पतिहि भजै॥
लोलुप भ्रम गृह पसु ज्यों जहँ तहँ सिर पदत्रान वजै।
तदपि अधम विचरत तेहि मारग कवहुँ न मूढ़ लजै॥
हौं हार्‌यौ करि जतन विविध विधि, अतिसय प्रवल अजै।
तुलसिदास वस होइ तवहिं जव प्रेरक प्रभु वरजै॥

(९)

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि राम भगति सुर सरिता आस करत ओस कन की॥
धूम समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की।
नहिं तहँ सीतलता न बारि पुनि, हानि होति लोचन की॥
ज्यों गच-काँच विलोकि स्येन जड़ छाँह अपने तन की।
टूटत अति आतुर अहार वस छति विसारि आनन की॥
कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि! जानत हौ गति मन की।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की॥

(१०)

तऊ न मेरे अघ अवगुन गनिहैं।
जौ जमराज काज सब परिहरि यही ख्याल उर अनिहैं॥
चलिहैं छूटि पुंज पापिन के असमंजस जिय जनिहैं।
देखि खलल अधिकार प्रभू सों मेरी भूरि भलाई भनिहैं॥

हँसि करिहैं परतीति भगत की भगत सिरोमनि मनिहैं।
ज्यों त्यों तुलसिदास कोसलपति अपनायहि पर बनिहैं।।

(११)

जानकी-जीवन की बलि जैहौं।
चित कहै राम सीय-पद परिहरि अब न कहू चलि जैहौं।।
उपजी उर प्रतीति, सपनेहुँ सुख प्रभुपद विमुख न पैहौं।
मन समेत या तन के बासिन्ह इहै सिखावन दैहौं।।
स्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहौं।
रोकिहौं नयन बिलोकत औरहिं सीस ईस ही नैहौं।।
नातो नेह नाथ सों करि सब नातों नेह बहैं हौं।
यह छरभार ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहौं।।

(१२)

सुनि सीतापति सील सुभाउ।
मोद नमन, तन पुलक, नयन जल, सो नर खेहर खाउ।।
सिसुपन तें पितु, मातु, बंधु, गुरु, सेवक, सचिव सखाउ।
कहत राम विधु बदन रिसोहैं सपनेहु लख्यो न काउ।।
खेलत संग अनुज, बालक चित जोगवत अनट अपाउ।
जीति हारि चुचुकारि दुलारत, देत दिवावत दाउ।।
सिला साप संताप बिगत भइ परसत पावन पाउ।
दई सुगति सो न हरि हरख हिय, चरन छुए पछिताउ।।
भव धनु भंजि निदरि भूपति भगुनाथ खाइ गए ताउ।
छमि अपराध, छमाइ पाँइ परि, इतौं न अनत समाउ।।
कह्यो राज, बन दियो नारिबस, गरि गलानि गयो राउ।
ता कुमातु को मन जोगवत ज्यों निज तन मरम कुघाउ।।
कपि सेवा बस भए कनौड़े, कह्यो "पवन सुत! आउ।

देवे को न कछू रिनिया हौं, धनिक तु पुत्र लिखाउ ।।"
अपनाए सुग्रीव विभीषन, तिन न तज्यो छल छाउ।
भरत सभा सनमानि सराहत, होत न हृदय अघाउ ।।
निज करुना-करतूति भगत पर चपत चलत चरचाउ।
सकृत प्रनाम प्रनत-जस वरनत सुनत कहत फिरि गाउ ।।
समुझि समुझि गुन ग्राम राम के उर अनुराग वढ़ाउ।
तुलसिदास अनयास रामपद पाइहै प्रेम-पसाउ ।।

(१३)

अव लौं नसानी, अव न नसैहौं।
राम कृपा भवनिसा सिरानी, जागे फिरि न डसैहौं ।।
पायो नाम चारु चिंतामनि, उर-करतें न खसैहौं।
स्याम-रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहि कसैहौं ।।
परवस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन्ह निज वस ह्वै न हँसैहौं।
मन-मधुकर पन करि तुलसी रघुपति-पद-कमल वसैहौं ।।

(१४)

केसव ! कहि न जाइ का कहिए ?
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए।।
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु विनु लिखा चितेरे।
धोए मिटै न, मरै भीति, दुख पाइय यहि तनु हेरे।।
रविकर-नीर वसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं।
वदन हीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं ।।
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रवल करि मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै ।।

(१५)

रे हरि ! कवन जतन सुख मानहु।
जिमि गज-दसन तथा मम करनी, सव प्रकार तुम्ह जानहु ।।

जो कछु करिय कहिय भवसागर तरिय वत्सपद जैसे।
रहिन आनि विधि, कहिय आन, हरिपद-सुख पाइय कैसे॥
देखत चारु मयूर नयन-सुभ, वोल सुधा इव सानी।
सविष उरग आहार निठुर अस, यह करनी वह वानी॥
अखिल जीव-वत्सल निर्मत्सर चरन कमल-अनुरागी।
ते तव प्रिय रघुवीर! धीरमति अतिसय निज-पर-त्यागी॥
जद्यपि मम अवगुन अपार संसर जोग्य रघुराया।
तुलसिदास निज गुन विचारि करुनानिधान! करु दाया॥

(१६)

हे हरि! कस न हरहु भ्रम भारी।
जद्यपि मृषा सत्य भासैं जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी॥
अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहिं जाइ गोसाईं।
विनु बाँधे निज हठ सठ परवस पर्यो कीर की नाईं॥
सपने व्याधि विविध वाधा भइ, मृत्यु उपस्थित आई।
वैद्य अनेक उपाय करहिं, जागे विनु पीर न जाई॥
श्रुति-गुरु-साधु-सुमृति-संमत यह दृश्य सदा दुखकारी।
तेहि विनु तजे, भजे विनु रघुपति विपति सकै को टारी॥
वहु उपाय संसार-तरन कह विमल गिरा श्रुति गावै।
तुलसिदास 'मैं मोर' गए विनु जिय सुख कवहुँ न पावै॥

(१७)

जो निज मन परिहरै विकारा।
तौ कत द्वैत-जनित संसृति-दुख, संसय, सोक अपारा॥
सत्रु, मित्र, मध्यस्थ तीनि ये मन कीन्हें वरिआई।
त्यागव गहव उपेच्छनीय अहि हाटक तृन की नाईं॥
असन, वसन, पसु, वस्तु विविधि विधि सव मनिमहँ रह जैसे।
सरग, नरक, चर, अचर लोक वहु वसत मध्य मन तैसे॥

विटप मध्य पुत्रिका सूत्र महँ कंचुक विनहिं वनाए।
मन महँ तथा लीन नाना तनु प्रगटत अवसर पाए॥
रघुपति भगति वारि छालित चित विनु प्रयास ही सूझै।
तुलसिदास कह चिद-विलास जग वूझत वूझत वूझै॥

(१८)

कवहुँ सो कर सरोज रघुनायक! धरिहौ नाथ! सीस मेरे।
जेहि कर अभय किए जन आरत वारक विवस नाम टेरे॥
जेहि कर-कमल कठोर संभु-धनु भंजि जनक संसय मेट्यो।
जेहि कर-कमल उठाइ वंधु ज्यों परम प्रीति केवट भेट्यो॥
जेहि कर-कमल कृपालु गीध कहँ पिंडोदक दै धाम दियो।
जेहि कर वालि विदारि दास हित कपि कुलपति सुग्रीव कियो॥
आयो सरन सभीत विभीषन जेहि कर-कमल तिलक कीन्हो।
जेहि कर गहि सुरचाप असुर हित अभय दान देवन्ह दीन्हो॥
सीतल सुखद छाँह जेहि कर की मेटति पाप, ताप, माया।
निसि वासर तेहि कर-सरोज की चाहत तुलसिदास छाया॥

(१९)

सकुचत हौं अति, राम कृपानिधि क्यों करि विनय सुनावौं?
सकल धर्म विपरीत करत केहि भाँति नाथ-मन भावौं?
जानत हूँ हरि-रूप चराचर मैं हठि नयन न लावौं।
अंजन-केस-सिखा जुवती तहँ लोचन सलभ पठावौं॥
स्रवनन को फल कथा तिहारी यह समुझौं समुझावौं।
तिन्ह स्रवनन परदोष निरंतर सुनि सुनि भर भरि तावौं॥
जेहि रसना गुन गाइ तिहारे विनु प्रयास सुख पावौं।
तेहि मुख पर अपवाद भेक ज्यों रटि रटि जनम नसावौं॥
'करहु हृदय अति विमल, वसहिं हरि' कहि कहि सवहि सिखावौं।

हौं निज उर अभिमान मोह-मद-खल-मंडली बसावौं ।।
जो तनु धरि हरि पद साधहिं जन सो विनु काज गवावौं ।
हाटक घट भरि धरचो सुधा गृह तजि नभ कूप खनावौं ।।
मन क्रम वचन लाइ कीन्हें अघ ते करि जतन दुरावौं ।
पर-प्रेरित इरिषा-वस कवहुक कियो कछु सुभ, सो जनावौं ।।
विनु द्रोह जनु बाँट पर्‌यो, हठि सवसों वैर वढ़ावौं ।
ताहू पर निज मतिविलास सब संतनि माँझ गनावौं ।।
निगम, सेष, सारद, निहोरि जो अपने दोष कहावौं ।।
तौं न सिराहिं जन्म सत लगि, प्रभु ! कहा एक मुख गावौं ?
जो करनी आपनी विचारौ तौ कि सरन हौं आवौं ?
मृदुल सुभाव सील रघुपति को, सो वल मनहिं दिखावौं ।।
तुलसिदास प्रभु ! सो गुन नहिं जेहि सपनेहु तुमहि रिझावौं ।
नाथ-कृपा भवसिंधु धेनुपद सम जिय जानि सिरावौं ।।

(२०)

कैसे देउँ नाथहि खोरि ?

कामलोलुप भ्रमत मन हरि ! भगति परिहरि तोरि ।।
वहुत प्रीति पुजाइवे पर पूजिवे पर थोरि ।
देत सिख सिखयो न मानत, मूढ़ता असि मोरि ।।
किए सहित सनेह जे अघ हृदय राखे चोरि ।
संग वस किए सुभ सुनाए सकल लोक निहोरि ।।
कहौं जो कलु धरौं सँचि पचि सुकृत-सीला बटोरि ।
पैठि उर वरवस दयानिधि ! दंभ लेत अँजोरि ।।
लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों गरे आसा डोरि ।
वात कहौं वनाइ वुध ज्यों वर विराग निचोरि ।।
एतेहुँ पर तुम्हरो कहावत लाज अँचई घोरि ।
निजलता पर रीझि रघुवर देहु तुमहिं छोरि ।।

(२१)

ऐसो को उदार जग माहीं ?
विनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं ।।
जो गति जोग विराग जतन करि नहिं पावत मुनि ज्ञानी।
सो गति देत गीध सवरी कहँ प्रभु न वहुत जिय जानी ।।
जो संपति दससीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्ही।
सो संपदा विभीषन कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्ही ।।
तुलसिदास सव भाँति सकल सुख जो चाहिय मन मेरो।
तौ भजु राम, काज सव पूरन करैं कृपानिधि तेरो ।।

(२२)

रघुपति भक्ति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार जानै सोइ जेहि वनि आई ।।
जो जेहि कला कुशल, ता कहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल-प्रवाह, सुरसरी वहै गज भारी ।।
ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ वलतें न कोउ विलगावै।
अति रसज्ञ सूच्छम पिपीलिका विनु प्रयास ही पावै ।।
सकल दृस्य निज उदर मेशि सोवै निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परमसुख अतिसय द्वैत-वियोगी ।।
सोक, मोह, भय, हरष, दिवस, निसि, देह काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा हीन संयम निर्मूल न जाहीं ।।

(२३)

यों मन कवहूँ तुम्हहि न लाग्यो।
ज्यों छल छाँड़ि सुझाव निरंतर रहत विषय अनुराग्यो ।।
ज्यों चितई परनारि, सुझे पातक-प्रपंच-घर-घर के।
त्यों न साधु, सुरसरि तरंग, निर्मल गुनगन रघुवर के ।।

ज्यों नासा सुगंध-रस बस, रसना षट रस रति मानी।
राम-प्रसाद-माल जूंठनि लगि त्यों न ललकि ललचानी।।
वंदन चंद्रवदनि भूषन-पट ज्यों चह पाँवर परस्यो।
त्यौं रघुपति पद-पदुम-परस को तनु पातकी न तरस्यो।
ज्यों सब भाँति कुदेव कुठाकुर सेए वपु-वचन-हिए हूँ।
त्यों न राम सुकृतज्ञ जो सकुचत सकृत-प्रनाम किए हूँ।।
चंचल चरन लोभ लगि लोलुप द्वार-द्वार जग बागे।
राम-सीय आस्रमनि चलत त्यों भए न स्रमित अभागे।।
सकल अंग पद-विमुख नाथ! मुख नाम की ओट लई है।
है तुलसिहिं परतीति एक प्रभु-मूरति कृपामई है।।

(२४)

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपा तें संत सुभाव गहौंगो।।
यथालाभ संतोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित-निरत निरंतर मन-क्रम-वचन नेम निबहौंगो।।
पुरुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान, सम सीतल मन परगुन, नहिं दोष, कहौंगो।।
परिहरि देह जनित चिंता, दुख सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरिभक्ति लहौंगो।।

(२५)

नाहिंन आवत आन भरोसो।
यहि कलिकाल सकल साधन-तरु है स्रम फलनि फरो सो।।
तप, तीरथ, उपवास, दान, मख, जो जेहि रुचै करो सो।
पाएहि पैं जानिबो करम-फल, भरि भरि बेद परो सो।।
आगम-विधि, जप, जाग करत नर सरत न काज खरो सो।
सुख सपनेहु न जोग-सिधि-साधन रोग-वियोग धरो सो।।

काम क्रोध, मद, लोभ, मोह मिलि ज्ञान-विराग हरो सो।
विगरत मन न्यास लेत जल नावत आम धरो सो।।
वहुमत सुनि बहुपंथ पुराननि, जहाँ तहाँ झगरो सो।।
गुरु कह्यो राम-भजन नीको मोहिं लगत राज-डगरो सो।।
तुलसी विनु परतीति प्रीति फिर फिरि पाँच मरै मरो सो।
रामनाम वोहित भवसागर चाहै तरन तरो सो।।

(२६)

जाके प्रिय न राम-वैदेही।
सो छाँड़िए कोटि वैरी सम जद्यपि परम सनेही।।
तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषन वन्धु, भरत महतारी।
वलिगुरु तज्यो, कंत व्रज-वनितनि, भए मुंद मंगलकारी।।
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहाँ आंखि जेहि फूटै वहुतक कहौं कहाँ लौं।।
तुलसी सो सव भाँति परमहित पुंजी प्रान तें प्यारो।
जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो।।

(२७)

कौन जतन विनती करिए ?
निज आचरन विचारि हारि हिय, मानि जानि डरिए।।
जेहि साधन हरि प्रबहु जानि जन सो हठि परिहरिए।
जातें विपत्ति-जाल निसि दिन दुख, तेहि पथ अनुसरिए।।
जानत हूँ मन वचन-कर्म परहित कीन्हे तरिए।
सो विपरीत देखि परसुख विनु कारन ही जरिए।।
श्रुति पुरान सव को मत यह सतसंग सुदृढ़ धरिए।
निज अभिमान मोह इर्षा वस तिनहि न आदरिए।।
संतन सोइ प्रिय मोहि सदा जातें भव-निधि धरिए।
कहो अब नाथ! कौन बल तें संसार सोक हरिए ?

जब-कब निज करुना भाव ते द्रवहु तो निस्तरिए।
तुलसिदास विस्वास आन नहिं, कत पचि-पचि मरिए ?

(२८)

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे।
नाहिं तो भव बेगारि महँ परिहौ, छूटत अति कठिनाई रे।
बांस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे।
हमहिं दिहल करि कुटिल करम चँद मँद मोल बिनु डोरा रे।
विषम कहार मार-मद-माते, चलहिं न पाउ बटोरा रे।
मंद, बिलंद, अभेरा, दलकन, पाइय दुख झकझोरा रे!
काँट, कुराय, लपेटन, लोटन, ठाँवहिं-ठाँव बझाउ रे!
जस जस चलिय दूरि तस जस निज बास न भेंट लगाऊ रे!
मारग अगम, संग नहिं संबल, नाउँ गाउँ कर भूला रे!
तुलसीदास भवत्रास हरहु अब, होहु राम! अनुकूला रे!

(२९)

मन पछितैहैं अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु करम, बचन, अरु ही तें॥
सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न काल बली तें।
'हम हम' करि धनधाम सँवारे, अंत चले उठि री तें॥
सुतबनितादि जानि स्वारथ-रत न करु नेह सब हीं तें।
अंतहु तोहि तजैंगे, पामर! तूं न तजै अब हीं तें॥
अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जी तें।
बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ विषय भोग बहुघी तें॥

(३०)

जौ मन भज्यो चहै हरि-सुरतरु।
तौं तजि विषय-विकार सार भजु, अजहूँ जो मैं कहौं सोइ करु॥

सम, संतोष, विचार बिमल अति, संत संगति ये चारि दृढ़ करि धरु ॥
काम, क्रोध अरु लोभ, मोह, मद, राग, द्वेष निसेष करि परिहरु ॥
स्रवन, कथा, मुख नाम, हृदय हरि, सिर प्रनाम, सेवा कर अनुसरु ।
नयननि निरखि कृपा-समुद्र हरि, अग-जग रूप भूप सीता बरु ॥
यहै भगति, वैराग्य, ज्ञान यह, हरितोषन यह शुभ व्रत आचरु ।
तुलसिदास सिवमत मारग यहि चलत सदा सपनेहुँ नाहिन डरु ॥

(३१)

कबहिं देखाइहौ हरि! चरन!
समन सकल कलेस कलिमल, सकल मंगल करन ॥
सरद-भव सुंदर तरुन तर अरुन वारिज-बरन ।
लच्छि लालित ललित करतल छवि अनूपम धरन ॥
गंग-जनक, अनंग-अरि-प्रिय, कपट-वटु बलि-छलन ।
विप्र तिय, नृग बधिक के दुख-दोष दारुन दरन ॥
सिद्ध-सुर मुनि-वृन्द-बंदित सुखद सब कहँ सरन ।
सकृत उर आनत जिन्हहि जन होत तारन-तरन ॥
कृपासिंधु सुजान रघुवर! प्रनत आरति हरन ।
दरस-आस-पियास तुलसीदास चाहत मरन ॥

(३२)

मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो ।
याके लिये सुनहु करुनामय! मैं जग जनमि जनमि दुख रोयो ॥
सीतल, मधुर पियूष सहज सुख निकटहिं रहत दूर जनु खोयो ।
बहु भाँतिन स्रम करि मोहवस बृथहिं मंदमति बारि बिलोयो ॥
करम-कीच जिय जानिसानि चित, चाहत कुटिल मलहि मल धोयो ।
तृषावंत सुरसरि बिहाय, सठ फिरि फिरि बिकल अकास निचोयो ॥
तुलसिदास प्रभु! कृपा करहु अब मैं निज दोष कछु नहिं गोयो ।
डासत ही गई बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ! नींद भरि सोयो ॥

(३३)

रामराय! विनु रावरे मेरे को हितु साँचो ?
स्वामि सहित सबसों कहौं सुनि गुनि विसेषि कोउ रेख दूसरी खाँचो ॥
देह-जीव-जोग के सखा मृषा टाँचन टाँचो।
किए विचार सार-कदली ज्यों, मनि-कनक संग लघु लसत बीच विच काँचो ॥
विनय-पत्रिका दीन की, बापु! आप ही बाँचो।
हिये हरि तुलसी लिखि सो सुभाय यही करि बहुरि पूंछिए पाँचो ॥

(३४)

पवन-सुवन! रिपुदवन! भरत लाल! लखन! दीन की;
निज-निज अवसर सुधि किए, बलिजाउँ, दास-आस पूजि है खास खीन की ॥
राज द्वार भली सब कहैं साधु समीचीन की।
सुकृतसुजस साहिब-कृपा स्वारथ-परमारथ भए गति-विहीन की ॥
समय संभारि सुधारिवी तुलसी मलीन की।
प्रीति-रीति समुझाइवी नतपाल कृपालुहिं परमिति पराधीन की ॥

(३५)

मारुति-मनरुचि भरत की लखि लखन कही है।
कलि कालहुं नाथ! नाम सो प्रतीति प्रीति एक किंकर की निबही है ॥
सकल सभा सुनि लै उठि जानि रीति रही है।
कृपा गरीब नेवाज की, देखत गरीब की साहब बाँह गही है ॥
बिहँसि राम कह्यो सत्य है, सुधि मैं हूँ लीह है।
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ-सही है ॥

दोहावली

(१)

एक भरोसो, एक बल, एक आस बिस्वास।
एक राम-घन-स्याम हित चातक तुलसीदास॥

(२)

जौ घन बरषै समय सिर, जौ भरि जनम उदास।
तुलसी या चित चातकहि तऊ तिहारी आस॥

(३)

चातक तुलसी के मते, स्वातिहु पियै न पानि।
प्रेम तृषा बाढ़ति भली, घटे घटैगी आनि॥

(४)

रटत रटत रसना लटी, तृषा सूखिगे अंग।
तुलसी चातक-प्रेम को नित नूतन रुचि रंग॥

(५)

चढ़त न चातक चित कबहुँ पिय पयोद के दोष।
तुलसी प्रेमपयोधि की ताते नाप न जोख॥

(६)

बरषि परुष पाहन पयद पंख करौ टुकटूक।
तुलसी परी न चाहिए चतुर चातकहि चूक॥

(७)

उपल बरषि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर।
चितव की चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर॥

(८)

पबि, पाहन, दामिनि, गरज, झरि झकोर खरि खीझि।
रोष न प्रीतम दोष लखि, तुलसी रागहि रीझि॥

(९)

मान राखिबो, माँगिबो, पिय सों नित नव नेहु।
तुलसी तीनिउ तब फबैं जो चातक मत लेहु॥

(१०)

तुलसी चातक ही फबै मान राखिबो प्रेम।
बक्र बुंद लखि स्वातिहू निदरि निबाहत नेम॥

(११)

तुलसी चातक माँगनो, एक सबै घन दानि।
देत जो भू-भाजन भरत, लेत जो घूंटक पानि॥

(१२)

तीनि लोक तिहुँ काल जस चातक ही के माथ।
तुलसी जासु न दीनता सुनी दूसरे नाथ॥

(१३)

प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि।
जाचक जगत कनाउड़ो कियो कनौड़ो दानि॥

(१४)

नहि जाँचत नहि संग्रहइ, सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी माँगनेहि को वारिद बिन देइ॥

(१५)

को को न ज्यायो जगत में जीवन दायक दानि।
भयो कनौड़ो जाचकहि पयद प्रेम-पहिचानि॥

(१६)

साधन साँसति सव सहत सवहि सुखद फल लाहु।
तुलसी चातक जलद की रीझि बूझि वुध काहु॥

(१७)

चातक जीवनदायकहि जीवन समय सुरीति।
तुलसी अलख न लखि परै चातक प्रीति प्रतीति॥

(१८)

जीव चराचर जहँ लगे है सव को हित मेह।
तुलसी चातक मन वस्यो घन सों सहज सनेह॥

(१९)

डोलत बपुल विहंग वन, पियत पोखरिन बारि।
सुजस-धवल, चातक नवल! तुही भुवन दसचारि॥

(२०)

मुख मीठे, मानस मलिन कोकिल, मोर, चकोर।
सुजस धवल, चातक नवल! रह्यो भुवन भरि तोर॥

(२१)

वास, वेश, वोलनि, चलनि मानस मंजु मराल।
तुलसी चातक-प्रेम की कीरति विसद बिसाल॥

(२२)

प्रेम न परखिय परुषपन, पयद सिखावन एह।
जग कह चातक पातकी, ऊसर बरसै मेह॥

(२३)

होइ न चातक पातकी जीवन दानि न मूढ़।
तुलसी गति प्रहलाद की समुझि प्रेम पथ गूढ़॥

(२४)

गरज आपनी सबन को गरज करत उर आनि।
तुलसी चातक चतुर भो जाचक जानि सुदानि॥

(२५)

चरग चंगुगत चातकहि नेम प्रेम की पीर।
तुलसी परवस हाड़पर परिहै पुहुमी नीर॥

(२६)

बध्यो बधिक पर्‌यो पुन्यजल, उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेम पट मरतहु लगी न खोंच॥

(२७)

अंड फोरि कियो चेटुवा, तुष पर्‌यो नीर निहारि।
गहि चंगुल चातक चतुर डार्‌यो वाहर बारि॥

(२८)

तुलसी चातक देत सिख सुतहि बार ही बार।
तात न तर्पन कीजियो बिना बारिधर धार॥

(२९)

जियत न नाई नारि चातक घन तजि दूसरहि।
सुरसरिहू को बारि मरत न माँगेउ अरघ जल॥

(३०)

सुन रे तुलसीदास! प्यास पपीहहि प्रेम की।
परिहरि चारिउ मास, जो अँचवै जल स्वाति को॥

(३१)

जाचै बारह मास पिये पपीहा स्वाति जल।
जान्यो तुलसीदास जोगवत नेही नेह मन॥

(३२)

तुलसी के मत चातकहि केवल प्रेम पियास।
पियत स्वातिजल जान जग, जाचक वारह मास।।

(३३)

आलवाल मुकुताहलनि हिय सनेह तरु-मूल।
होइ हेतु चित चातकहि स्वाति सलिल अनुकूल।।

शब्दार्थ तथा टिप्पणी

रामचरित मानस

(१) सुखद अंग=सुख देने वाले अंग, पुरुषों के लिए दाहिने तथा स्त्रियों के लिए बाएँ अंगों का फड़कना मंगलदायक माना जाता है; उछाह=(उत्साह) उमंग; सनेह=(स्नेह) प्रेम; सुरा=मदिरा; छाके=छके हुए, पीकर मतवाले हुए; रामसखा=राम का मित्र निषादराज; सैलसिरोमनि=पर्वतों में श्रेष्ठ; चित्रकूट; पय=पयस्विनी नदी; मगन=(मग्न) डूबे हुए; सेष=(शेष); अहमम=अहंता; जनेसु=(जनेषु) जनों में।

(२) अवसेषा=(अवशेष) शेष रहने पर ही; अनुहारी=मुखाकृति की; सोच विमोचन=सोच से मुक्त करनेवाले, राम; कुचाह=अनिष्ट; भूरि=बहुतेरे; सचकित=आश्चर्ययुक्त; सरोरुह=कमल।

(३) सियरवनू=(सीतारमण) राम; बहोरी=फिर; थिति=(स्थित स्थान), आधार; खभारू=खलबली; समय सम=समय अथवा अवसर के अनुकूल; समयँ=समय पड़ने पर।

(४) जनाई=प्रकट; एकाकी=अकेले; कुमंत्रु=बुरा विचार; कलपि=कल्पना करके; बटोरि=इकट्ठा करके; गजाली=हाथियों की पंक्ति; जाएँ=व्यर्थ ही; बौराई=बावला हो जाता है; भूमिसुर=ब्राह्मण, ऋषि; जान=(यान) सवारी।

चंद्रमा ने एक बार तीनों लोकों पर विजय प्राप्त की, उसके अभिमान में उन्होंने गुरुपत्नी के साथ अशिष्ट व्यवहार किया।

नहुष एक प्रतापी राजा थे, जिनको उस समय इन्द्रासन दिया गया जब वृत्रासुर के वध के कारण लगी हुई ब्रह्महत्या से इंद्र अपदस्थ हो गये। किंतु इंद्रासन पाने

पर नहुष ने इंद्राणी पर भी अपना अधिकार समझा और उनसे अनुचित प्रस्ताव किया। इंद्राणी ने कहला भेजा कि नहुष यदि सप्तर्षि की सवारी पर चढ़कर आवें तो वे उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर लेंगी। नहुष ने राजमद में ऐसा ही किया उन्होंने सप्तर्षि को पालकी में लगाया। सप्तर्षि वोझा ढो नहीं सकते थे, इसलिए वेग से चल नहीं पाते थे, और नहुष को शीघ्र इंद्राणी के पास पहुँचने की आतुरता थी, इसलिए उन्होंने सप्तर्षि से कहा 'सर्प-सर्प' अर्थात् 'चलो चलो'। इससे सप्तर्षि ने कुपित होकर उन्हें शाप दे दिया कि वे सर्प हो जावें, और वे सर्प हो गए।

वेन एक राजा था, जो अनीश्वरवादी हो गया था। उसने राजमद में अपने राज्य में यज्ञादिक वंद करा दिया था, इसलिए कुपित होकर ऋषियों ने उसे मर जाने का शाप दिया, और वह मर गया।

(५) सहस्रवाहु माहिष्मती के राजा थे। ये वड़े प्रतापी थे, किन्तु राजमद में आकर इन्होंने जमदग्नि की गौ छीन ली। अतः जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने इन्हें मार डाला।

सुरनाथ—इंद्र—के व्यभिचार की कथाएँ प्रसिद्ध हैं। अहल्या के साथ जो व्यभिचार उन्होंने किया था, उसके कारण गौतम ने उन्हें सहस्रभग होने का शाप दिया था, और इंद्र सहस्रभग हो गये थे।

त्रिशंकु एक प्रतापी राजा थे, जो यज्ञ करके सदेह स्वर्ग जाना चाहते थे। उनके पुरोहित वशिष्ठ ने इस प्रकार का यज्ञ कराना अस्वीकार कर दिया। त्रिशंकु ने विश्वामित्र से कहा, तो उन्होंने अपने तप-बल से त्रिशंकु को स्वर्ग भेजा। किन्तु इंद्रादि देवताओं ने उन्हें स्वर्ग में स्थान न दिया। इसलिए त्रिशंकु पृथ्वी और स्वर्ग के वीच ही में अटके रह गये।

निदरे=निरादर किया; पेषी=देखकर; पुलक=रोमांच; उपचरा=छेड़-छाड़ की; अनुग=अनुचर, सेवक।

(६) रजायेसु=राजाज्ञा; भाथा=तरकस; सरासनु=धनुष; सायक=वाण; करि=हाथी; निकर=समूह; लवा=एक छोटा पक्षी; दोहाई=शपथ; माषे=विक्षुब्ध; वान=(प्रमाण) सत्य; भभरि=घवड़ा कर; भगान=भागना।

(७) मगन=(मग्न) डूबा हुआ; विपुल=अपार; सहसा=जल्दी में; अँचवत=आचमन करते, पीते; मातहिं=मत्त हो जाते हैं; पद=स्थान; सीकरनि=बूंदों से।

(८) तरुन=(तरुण) अर्थात् मध्याह्न के; तरनिहि=सूर्य को; गिलई =निगल जावे; मकु=भले ही; घटयोनि=अगस्त्य, जिन्होंने पुराणों के अनुसार समुद्र को पी डाला था; सहज=स्वभाव से प्राप्त; बरु=भले ही; छोनी=(क्षोणी) पृथ्वी; आना=सौगंध; सुचि=(शुचि) पवित्र; खीर=(क्षीर) दूध; परपंच=(प्रपंच) सृष्टि; विवुध=देवता; हेतु=प्रेम; निकेतु=घर।

(९) नियोग=आज्ञा; कुतरक=(कुतर्क); अनत=(अन्यत्र); मते=मत में; छमि=क्षमा करके।

(१०) परिहरहिं=छोड़ दें; मलिनमनु=मन का मलिन अर्थात् मन का बुरा; जनही=जन (सेवक) का; पेम=(प्रेम); सकुच=संकोच; खोरी=खोटापन, कुटिलता; धोरी=धुरी को धारण करने वाले; उताइल=उतावली के साथ; जल-अलि=जल के भौंरे की; विदेहु=(विदेह) देह का विस्मरण; परिनाम=(परिणाम) अन्त में।

(११) छुधित=(क्षुधित) भूखा; ईति=अकाल; भीति=भय; त्रिबिध ताप=आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दुःख; अनुहारी=अनुरूप, समान; भ्राजा=शोभित हो रहा है; बिराग=(बैराग्य); बिवेक=(विवेक) ज्ञान; जम=(यम) अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना); ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह; नेम=(नियम) शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान; सान्ति=शांति; सुराऊ=सुराजा, अच्छा राजा; मोह=अज्ञान; दल=सेना।

(१२) खेरे=खेड़े, छोटे गाँव; खगहा=गैंडा; हरि=सिंह; बराहा=(वाराह) सूअर; महिष=भैंसा; वृष=बैल; निसान=धौंसे; चक=(चक्रवाक) चकवा पक्षी; मंजु=सुंदर; कूजत=कूजन कर रहे हैं; अलि=भ्रमर; मुद=आनंद; सिराने=समाप्त होने।

(१३) जंवु=जामुन; रसाल=आम; बटु=(वट) बरगद; अविरल=सघन, घनी; सँकेलि=एकत्र करके; सुषमा=सुंदरता।

(१४) भाउ=आविर्भाव, जन्म; अचर=जड़; सचल=चेतन; अमिअ=(अमृत); मंदर=मंदराचल पर्वत।

(१५) जोरा=जोड़ी; मुनिपट=वल्कल वस्त्र; तून=तरकस; जटिल=जटा धारण किये हुए; लसत=शोभित हो रहे हैं।

(१६) पाहि=रक्षा कीजिए; गोसाईं=स्वामी; लकुट=डंडा; गुदरना=निवेदन करना; भनना=कहना; चंग=पतंग; खेलारू=खिलाड़ी; अपान=अपनापन, अपनी सुधि।

(१७) आखर=(अक्षर); गाँडर=भेड़; भूरि=बड़े; भायँ=भाव अर्थात् प्रेम से।

(१८) ललकि=लालायित होकर; सानुकूल=प्रसन्न; अपडर=अनुचित भय; छूंछा=खाली, रहित; सेनप=सेनापति।

(१९) आगवन=(आगमन) आना; रामसखा=राम का मित्र, केवट; लुठत=लोटते हुए।

(२०) आरत=(आर्त) दुखी; भायँ=भाव से; रुख=(रुख) अभिरुचि; भेई=भिगोकर; खोरी=खोटापन, दोष; प्रबोध=समझाना; परितोष=संतोष; अंब=माता।

(२१) पाऊ=(पाद) चरण, पैर; नियोगू=आज्ञा; महिसुर=ब्राह्मण।

(२२) जेता=जितना; सहमि=स्तम्भित होकर; लोयन=(लोचन) नेत्र; सोहाग=(सौभाग्य)।

(२३) मायिक=माया जनित; कुलिस=(कुलिश) वज्र; अकाजेउ=मरे; निरंबु=निर्जल; भोर=सवेरा।

(२४) तरनी=(तरणि) सूर्य; संमत=विचार; पिरीतें=प्रीतिपात्र; अमरावती=अमरपुरी, स्वर्ग।

(२५) पयँ=पयस्विनी में; ओघ=समूह; रामसैल=कामद गिरि; वैर-विगत=वैर से रहित होकर।

(२६) परनकुटीं=दोनों; रूरीं=सुन्दर; जुरीं=गुच्छे; सुकृती=सत्कर्मी

पुण्यात्मा; प्रसाद=प्रसन्नता, कृपा; मरु धरनि=मरुभूमि, मारवाड़; नेवाजा=कृपा की; छोह=कृपा।

(२७) पाहुने=अतिथि; वासन=वर्त्तन; अघाना=तृप्त होना; काऊ=कभी।

(२८) वासर=दिन; सरिस=समान, बराबर; माहूं=में; जमहि=यम से; जाचति=याचना करती है, माँगती है; संकोच=(संकोच) कमी।

(२९) कुचाली=बुराई; भीति=भय; साली=धान; अवकलना=सूझना; बहुरना=वापस होना; हरगिरि=कैलाश।

(३०) समय समाना=समयोचित; कुलि=सभी; अहिप=अहिराज, शेष; निगमागम=वेद-शास्त्र; रजाइ=राजाज्ञा।

(३१) नय=नीति; भोरे=भूले हुए; राउरि=आप की; छेंकी=रोक दिया।

(३२) फुरि=सच्ची; अभिमत=मनचाही वस्तु; पवान=(प्रमाण) सत्य।

(३३) विदेह होना=देह की सुध न करना; वोहित=जहाज; सरसी=तलाई, छोटा तालाब; गड्ढी; अनुहारी=अनुकूल।

(३४) भाषना=कहना; घटिहि=करेगा; साषी=(साक्षी) गवाह; निचोरि=निचोड़ कर, सार निकाल कर।

(३५) वेदहुँ=वेद में भी, पारमार्थिक दृष्टि से भी; अरगाई=चुप होकर।

(३६) छरुभारू=उत्तरदायित्व; खुनिस=खीझ, रिस।

(३७) वीच=अंतर; पारना=डालना; संबुक=घोंघी; अवगाहू=अथाह; काकु=व्यंग्य।

(३८) पयादेहि पाएँ=पैदल; घाएँ=घाव से; वेहु=(वेध) छेद; तामस=क्रोध।

(३९) खभारू=विषाद; तुसारू=(तुषार) पाला; कैरव=कुमुद; जायँ=व्यर्थ; पुन्यसिलोक=(पुण्यश्लोक) पुण्यात्मा; तर=नीचे, घटकर।

(४०) दुरना=छिपना; पराना=पलायित होना; भागना; पन=प्रण, प्रतिज्ञा; सत्यसंध=सत्यप्रतिज्ञ।

(४१) अंवरीष-दुर्वासा की कथा यह है कि अंवरीष एक बड़े हरिभक्त और धार्मिक राजा थे। एक बार वे एकादशी का व्रत रहने के अनन्तर द्वादशी को पारण करने जा ही रहे थे कि दुर्वासा ऋषि आ पहुँचे। राजा ने उन्हें भोजन के लिए आमंत्रित किया। दुर्वासा ने कहा कि वे शीघ्र ही नदी से स्नान करके लौटते हैं। द्वादशी समाप्त होने पर आई, फिर भी वे न लौटे। पारण का विधान यह है कि वह द्वादशी में ही होना चाहिए, नहीं तो दोष लगता है। अतः ब्राह्मणों की सलाह से उन्होंने भगवान् का चरणामृत लेकर पारण कर लिया। तब तक दुर्वासा लौटे और यह जानकर उन्होंने अपनी जटा के एक वाल से कृत्या को उत्पन्न करके अंवरीष का विनाश करना चाहा। भगवान् ने जव यह देखा तो उन्होंने तुरन्त अपना सुदर्शनचक्र भेज दिया, जिससे न केवल अंवरीष की उस कृत्या से रक्षा की वरन् दुर्वासा का पीछा किया, और जव तक उन्होंने अंवरीष से क्षमा-याचना न की उनका पीछा न छोड़ा।

प्रह्लाद और नृसिंह अवतार की कथा यह है कि हिरण्यकशिपु ने तपस्या करके ब्रह्मा से वर प्राप्त किया कि न वह मनुष्य से मरे और न पशु से। इस प्रकार का वर पाकर वह मनमाने अत्याचार करने लगा। उसका पुत्र प्रह्लाद हरिभक्त था, उसको वह हरिभक्ति से रोकने लगा; किन्तु प्रह्लाद ने जव उसकी आज्ञा का पालन न किया, तो उसने प्रह्लाद को मरवाना चाहा। उसी समय भगवान् ने नृसिंह अवतार धारण किया जो न नर का था, और न पशु का ही; और उसका वध कर डाला।

(४२) ठीका=निश्चय।

(४३) पाउ रोपि=पैर जमा करके, दृढ़तापूर्वक; घाला=नष्ट किया; गोई=छिपी।

(४४) छोभ=(क्षोभ) चिन्ता।

(४५) नतरु=नहीं तो; अभारू=(आभार) उत्तरदायित्व; अनट=विगड़ी वात; अवरेव=उलझन।

(४६) चर=दूत।

(४७) जनकौरा=जनकपुरवासी; लखाउ=पता।

(४८) साहनी=ऊँटसवार; गय=(गज) हाथी; दुघरी=दो घड़ी का मुहूर्त।

(४९) गनप=गणेश; तमारी=सूर्य; अछत=रहते हुए।

(५०) संभ्रम=आदर।

(५१) पाथु=जल।

(५२) करारे=किनारे; उवास=लंबी साँसें; अवर्त्त=चक्कर; ऐक=(ऐक्य) एकता; अवगाहि=डुबकी लगाकर।

(५३) विषई=विषयों में—इन्द्रियों के सुखों में—पड़े हुए लोग; सयाने=ज्ञानवान् लोग, निमिराज=जनक।

(५४) हंस=सूर्य; काँवरि=वंहँगी।

(५५) पहुनाई=आतिथ्य; फरहार=(फलाहार)।

(५६) अटन=घूमना।

(५७) सक्कत=कोई।

(५८) छति=(क्षति) हानि; लाभू=(लाभ); गहबर=दुख भरे।

(५९) भायप=भ्रातृस्नेह; सयानप=सयानापन, बुद्धिमत्ता; बल्लभहि=वल्लभा (प्रियतमा) को।

(६०) कहब=कहिएगा; बिथकि=थकित हो करके; थलहि=स्थान को।

(६१) मुधा=झूठा।

(६२) पयागू=(प्रयाग); बट=बरगद का वृक्ष; चिरजीवी मुनि=मार्कण्डेय मुनि।

(६३) थल तीनि बड़ेरे=तीन बड़े स्थान हरिद्वार, प्रयाग और गंगासागर; समय सिर=समय पर, अवसर पाकर।

(६४) बिभूती=(विभूति) ऐश्वर्य।

(६५) वर वरनी=अच्छे वर्ण अर्थात् रंगवाली।

(६६) रउरे=आपके।

(६७) विरागे=विरक्त हो गए।

(६८) भइ=होकर।

(६९) हहरि=घबड़ाकर।

(७०) चन्दकर=सूर्यकी; काका=चक्रवाक।

(७१) पुरोध=पुरोहित (वशिष्ठ); भदेसू=भद्दा, अनुचित; ऊतरु=उत्तर।

(७२) विंधि=विंध्य पर्वत; घटज=अगस्त्य; कनक लोचन=हिरण्याक्ष; छोनी=पृथ्वी; जगजोनी=जग को जन्म देने वाली; वराह=(वाराह) शूकरावतार; निहोरे=विनती की; भारती=सरस्वती, वाणी।

(७३) सुहृद=मित्र; पेली=उल्लंघन करके; सकेली=वटोर कर; पोच=बुरा; माहुर=विष।

(७४) निसील=शीलहीन, चरित्रहीन; निरीस=(निरीश) अनीश्वरवादी; सामुहें=(सम्मुख) सामने; कोपी=कोई; पन रोपी=वाजी लगा कर; बरजोर=बलपूर्वक।

(७५) बाएँ लाइ=उपेक्षा करके।

(७६) सीवँ=(सीमा); मघवा=इंद्र।

(७७) पाकरिपु=इंद्र; सँकेला=एकत्र किया; उचाट=अन्यमनस्कता; निजु=निश्चित रूप से, भलीभाँति।

(७८) भारे=भारी; जंत्री=जकड़ दिया; कानि=मर्यादा।

(७९) नयनागर=नीति में प्रवीण; बानि=(वाणी) सरस्वती।

(८०) तात=पिता; खुआरू=नष्ट; अंथव=अस्त हो।

(८१) भूति=ऐश्वर्य; वेनी=त्रिवेणी; ओड़ियहिं=रोके जाते हैं; असनि=वज्र; घाए=घाव, चोट।

(८२) पानि=(पाणि) हाथ।

(८३) चरहू=विचरण करो।

(८४) तोय=जल।

(८५) सनेम=नियमपूर्वक।

(८६) दुराई=छिप गई; मृदुताहिं=कोमलता से; प्राकृतहु=साधारण जन को भी, लौकिक जन को भी।

(८७) निमज्जन=स्नान।

(८८) तेरहुति=मिथिला; जनु=सेवक।

(८९) सगाईं=संवंध से; वदि=लिए।

(९०) पाँवरी=पादुका, खड़ाऊँ; चरनपीठ=खड़ाऊँ; जामिक=जमानत-दार; संपुट=डिब्बा; आखर जुग=दो अक्षर राम नाम के।

(९१) हहरि=घबड़ा कर; गोहारी=पुकार लगाकर; धारि=सेना; मोचत=छोड़ते हुए, गिराते हुए; निरलेप=संसार से निर्लिप्त।

(९२) प्राकृत=लौकिक।

(९३) सुचाली=सत्कर्मी।

(९४) पटु पालकी=परदेदार पालकियाँ।

(९५) जोहारि=प्रणाम करके; कहि=कह सुनाई; खरो=अधिक।

गीतावली

(१) धौं=ज्ञात नहीं; सकुचनि=संकोच के कारण; निमेषनि=पलकों; जोगवैं=रक्षा करती हैं; मख=यज्ञ; काकपक्ष=जुल्फ।

(२) नेवनि=नयनों ने; अवरेव=टेढ़ी वात, उलझन; सुरारी=राक्षस; केलिवान धनु=खेल के बाण-धनुष।

(३) सुचाली=सत्कर्मी; सुठि=अधिक।

(४) माईं=सखी; छाईं=आच्छादित।

(५) पनहियाँ=जूतियाँ; प्रथम ज्यों=पहले के समान; सवारे=सवेरे; वलि=निछावर; बार=देरी; जेंइय=भोजन कीजिए; समय=समय की दशा।

(६) पयान=(प्रयाण) गमन; अरुझि=(उलझ); लेखे=लेखा, उधेड़वुन।

(७) अजिर=आँगन; तामरस=कमल; भूरि=विशेष; रुज=रोग।

(८) पुरवैं=पूरा करें; सानुकूल=प्रसन्न; संभ्रम=औचक; चित्र लिखि काढ़ी=चित्र में अंकित करके उरेही गई हो।

(९) सुरभौन=देवलोक, स्वर्ग; दौन=(दमन) विनाशकारी रोग; विसूरति=सोचा करती है।

(१०) मारिखोई=मृत्यु; मृतक=मुर्दा।

(११) अपनो सा=अपने तईं।

(१२) पति=स्वामी; हित=प्रेम; हेतु=प्रेम; हेरि=देखकर; सुरति=स्मृति, सुध; घारे=(घोड़े)।

(१३) वहुरो=पुन:; सार=देखभाल; झाँवरे=मुरझाए; अँदेसो=(अंदेशा) डर।

(१४) वरे हैं=वरण किया है; अंव=माता; अंवक=नेत्र; अंवु=जल, आँसू; पैंत=पाँसे; सुढर=अच्छे ढर्रे से, अच्छे ढँग से।

(१५) जाय=व्यर्थ; घटयौ=कर सका; गुड़ी=पतंग; वाय=(वायु), हवा; माय=माता; नायँ=(नाम); तरनि-त्रासक=सूर्य को त्रास या कष्ट पहुँचाने वाले हनुमान।

(१६) च्वै=चूने; क्वै=कोई; स्वै हैं=सोवेंगे; साल भंजनि=साल के वृक्ष को काटने वाली, कुल्हाड़ी।

(१७) वारि=वर्षा; बयारि=हवा; हिम=पाला; आतप=धूप।

(१८) गनक=ज्योतिषी।

(१९) छेमकरी=(क्षेमकरी), चील की जाति की एक चिड़िया; कुकुम=केशर; अकनि=सुन कर; सिरानी=समाप्ति पर आई; चाह=समाचार; मानी=नष्ट कर दी।

कवितावली

(१) वासव=इंद्र; सिंगार=(शृंगार) शोभा; समय=समय आने पर; परत=गिराते; मार=कामदेव; वापिका=बावली।

(२) मेघमाल=बादल-समुदाय; बनपाल=वन के रक्षक; पैठो=घुसा; वजाइ=घोषणा करके; समीर को=समीर के पुत्र, हनुमान।

(३) वटोरि=इकट्ठा करके; तमीचर=राक्षस; खोरी=गली; लंगूर=

(लाङ्गूल) पूंछ, कूर=(क्रूर) दुष्ट; तूर=(तूर्यं) तुरही; बालधी=पूंछ; दवारि=दावाग्नि, जंगल में लगने वाली आग; सूर=(सूर्य)।

(४) निबुकि=मुक्त होकर, छूट कर।

(५) व्योम वीथिका=आकाशरूपी गली; प्रजारी है=जलाया है।

(६) वुवुक=आग की लपटें; ववुकारी देत=आवाज लगाते हैं; निकेट=घर; छहरा=तड़के; भोले=भोले; अज्ञ; छोरो=(छोड़ो), खूंटे से खोल दो; छेरी=(छेड़ी) बकरी।

(७) सेल=साँगी, एक प्रकार का अस्त्र; पास=(पास); बाँधने का एक हथियार; परिध=गदा; दंड=डंडा; समिध=हवनकुंड में जलने वाली लकड़ी; सौंज=घर का सामान; पुंगीफल=सुपारी; श्रुवा=लकड़ी का चम्मच जिससे हवन की अग्नि में हव्य डाला जाता है; हाँकि-हाँकि=उच्च स्वर से कह-कहकर; हुनै=हवन करते हैं।

(८) गाज्यो=गर्जन किया; गाज=बिजली; उलटै=उडेलते हैं; भहराने=गिर पड़े; परावनो=भगदड़; घकनि=धक्कों से; पेलि=ठेल कर।

(९) मारतंड=(मार्तण्ड), सूर्य; बावनो=वामनावतार; साहब=स्वामी; अवनो=आने को हैं; बादि=व्यर्थ।

(१०) परानी=भागी; केतो=कितना; बापुरो=वेचारा; बलाइ=(बला) विपत्ति; घालिहै=नष्ट करेगा।

(११) अनेरे=अज्ञानी; मेलैं=मिलाते हैं; गरे=गले; मँदोवै=मंदोदरी; बिगौवै=बिगाड़ती है, दुर्दशा करती है; दाढ़ीजार=जिसकी डाढ़ी जला देने के योग्य हो अर्थात् जिसका मुंह झुलस देने के योग्य हो, एक प्रकार की गाली।

(१२) डाढ़त=जलती हुई; अगार=घर; सहन भँडार=घर के बाहर और भीतर; को=कौन; बयो लुनियत=बोया हुआ काटा जा रहा है।

(१३) बिलखानी=व्याकुल।

(१४) कोट ओट=किला आदि; अट्टनि=अटाओं पर; पौरि=फैलकर; बूंदिया=बूंदों के आकार की एक मिठाई।

(१५) धुंध=धुंधलापन; तौंसियत=तपे जाते हैं।

(१६) परे पाइमाल जात=पायमाल हुए जाते हैं; पैरों से रौंद उठ रहे हैं।

(१७) सतराइ जाइ=चिढ़ जाता था।

(१८) करै धौज=दौड़ धूप करता है; आँजि=झुलस कर; गाढ़े परे=विपत्ति में पड़े; गाल को बजावनो=गाल बजाना, बढ़-बढ़ कर बातें करना।

(१९) रजाइ=आज्ञा; जीवन=पानी।

(२०) जुगषट्=बारह; सर्पी=घी; धुनैं=पीटते हैं; दससीस ईस बामता बिकार है=दशशीश (रावण) के विधाता वाम (विरुद्ध) हैं, उसी का यह परिणाम है।

(२१) ओल=जमानत।

(२२) अकाज=अहित।

(२३) सँधानो=चटनी आदि स्वादिष्ट पदार्थ; सीधो=सीधा, खाने (भोजन) का सामान; बखार=वह स्थान जहाँ पर नाज इकट्ठा करके रख दिया जाता है; पेटारे=बड़े डिब्बे; पीठ=पीढ़े।

(२४) हाटक=सोना; ताय=(ताप) जलन; पवमान=पवन; परोसो=परसा, सामने रखा; चाय सों=प्रेमपूर्वक।

(२५) विराट उर=विराट् पुरुष के हृदय में; सुखराँक सो=सुखहीन से; ओट पावै=कम होता था; मनाक=तनिक भी; सोधि=शुद्ध करके; सरवाक=(शराव) मिट्टी की प्याली; मृगांक=मृगांक रस, जो राजयक्ष्मा की एक औषधि है।

(२६) प्रबोध करि=समझा कर; डफोरि कै=ललकार कर।

(२७) सिद्धिपीठ=वह स्थान जहाँ पर तांत्रिक मंत्रसिद्धि के लिए साधना करते हैं; जागो है मसान सो=मसान की भाँति जगा है, कुछ मंत्र श्मशान भूमि में रात्रि को सिद्ध किये जाते हैं, उसी क्रिया को 'मसान जगाना' कहते हैं।

(२८) अंकमाल=अँकवार, भुजाओं में भर कर मिलना।

(२९) प्रानहेतु=जिसके द्वारा प्राणों की रक्षा हुई; भे बिगत स्रमसूल हैं=थकावट की पीड़ा से रहित हो गये हैं।

(३०) देवान=(दीवान) दरबार।

विनय-पत्रिका

(१) जीहा=(जिह्वा), जीभ; मेह=(मेघ), वादल; हठि=हठपूर्वक; निरासा=आशा न रखते हुए; सीकर=बूंद; तरजि=धमकी देकर; परिमित=पराकाष्ठा, चरम सीमा; एक अंग मग=एकांगी प्रेम मार्ग, प्रेम की वह प्रणाली जिसमें प्रेमपात्र से उसके बदले में प्रेम की अपेक्षा नहीं की जाती; बिलमु=विलंब कर; निरुपधि=निस्सीम।

(२) गुलाम=(गुलाम), दास; रामबोला=राम की रट लगाने वाला; लूगा=वस्त्र; निगड़=बेड़ी; साँसति=दुःख, आरत=(आर्त), पीड़ित; दुरित=पाप; पीठ मींजना=पीठ ठोकना, धैर्य दिलाना; बोलि=बुलाकर; बिरद=यश; बरेखी=विवाह संबंध।

(३) आर्ति=पीड़ा; ठाकुर=स्वामी; चेरो=दास।

(४) कृपाकर=(कृपा आकर), कृपा की खान; कारुनिक=करुणायुक्त; त्रिविध ज्वर=त्रिताप=दैविक, दैहिक भौतिक दुःख; दौराई=पागल की बातें; रंकतर=अन्य की अपेक्षा अधिक रंक या दरिद्र; विडंम=दंभ; भासे=भासित होता, प्रतीत होता है; संसृति=संसार, जन्म-मरण; भेषज=औषधि; भव=संसृति।

(५) सँभारहि=सेवा में लगा रह; गंजन=नष्ट करने वाले।

(६) बिछुरे ससि रवि मन नयननि ते=(चन्द्रमा मनसो जातः चक्षोः सूर्योऽजायत—पुरुष सूक्त) ऐसा माना गया है कि चन्द्रमा परम पुरुष के मन से तथा सूर्य उसके चक्षुओं से उत्पन्न हुए हैं, और इस प्रकार जन्म लेने के कारण उससे वियुक्त हो गये हैं; तजे चरन=चरणों से निकलने पर; निबेरो=निपटा दिया है।

(७) सहज सुख=आत्मसुख, ब्रह्मानंद का सुख; तान्यो=ताना हुआ, आकर्षित; सिरान्यो=समाप्ति पर आ गया।

(८) निजै=अपना ही; प्रसव=संतानोत्पत्ति; गृहपसु=कुत्ता; पदत्रान =(पादत्राण) पनही, जूता; अजै=(अजय) अजेय।

(९) गच=भूमि, फर्श; सेन=(श्येन), वाज।

(१०) अनिहैं=ले आएँगे, करेंगे; खलल=(खलल) बाधा।

(११) खेहर=धूल; रिसौहैं=रोषयुक्त; जुगवत=रक्षा करते, सहन करते थे; अनट=नीति-रीति विरुद्ध बातें; अपाउ=वुरे व्यवहार; हेरि=देख कर; निदरि=निरादर करके; खाइ गए ताउ=(ताव खा गये) अकड़ गए, रुष्ट हो गए; अनत=(अन्यत्र); समाउ=सहनशीलता; कनौड़े=उपकृत, कृतज्ञ; छाउ=छाया; चपत=दवाते हैं; सकृत=एक वार; अनयास=(अनायास); पसाउ=(प्रसाद)।

(१२) गैहौं=गाऊँगा; नैहौं=झुकाऊँगा; छरभार=उत्तरदायित्व।

(१३) नसानी=बिगड़ी; दहैहौं=विस्तर लगाऊँगा; चिन्तामणि=सह मणि जिससे ऐसा विश्वास किया जाता था कि समस्त मनचाही वस्तुएँ प्राप्त की जा सकती थीं।

(१४) भीति=दिवाल; चितेरे=चित्रकार ने; भीति=दर; रविकर नीर=मृगतृष्णा का जल; मकर=घड़ियाल; आपन=आत्म स्वरूप।

(१५) गजदसन=हाथी के दाँत=कहावत है कि हाथी के दाँत खाने के और तथा दिखाने के और होते हैं। वच्छपद=वछड़े के खुर से बना हुआ गड्ढा; निर्मत्सर=ईर्षा रहित।

(१६) मृषा=असत्य; अर्थ=इन्द्रियों के विषय; सुमृति=(स्मृति)।

(१७) मध्यस्थ=उदासीन; वरियाई=वलपूर्वक; असन=भोजन; पुत्रिका=पुतली; कंचुक=वस्त्र; छालित=धोए हुए; चिदविलास जग=ज्ञान के द्वारा बोधगम्य जगत्।

(१८) वारक=एक वार; उदक=जल=तर्पण का जल; बिदारि= नष्ट करके।

(१९) चराचर=चेतन तथा अचेतन जगत्; अंजनकेस=अग्नि; सिखा (शिखा) लपट; सलभ=पतिंगा; तावौं=दंद करके रख देता हूँ; भेक=मेंढक; हाटक=सोना; बाँट पर्‍यो=हिस्से में पड़ा है; धेनु षुर=गाय के खुर के पड़ने से बना हुआ गड्ढा।

(२०) खोरी=दोष; चोरी=चुराकर; सचिपचि=यत्नपूर्वक; सिला=खेत में पड़े हुए दाने जो फसल कटने के बाद रह जाते हैं; अंजोरी=छीन।

(२१) द्रवै=कृपालु हो।

(२२) सफरी=मछली; सर्करा=(शर्करा) शक्कर; द्वंत बियोगी=द्वन्द्वातीत अवस्था को प्राप्त।

(२३) षटरस=भोजन के षट्रस अर्थात् छः प्रकार के स्वाद; पाँवर=नीच; सेये=सेवा की; बपु=शरीर अथवा कार्य द्वारा।

(२४) नेम-=नियम; परुष=कठोर; बिगतमान=अभिमान से रहित होकर; सम=समान, दुख-सुख में एक सा।

(२५) आगम=शास्त्र; आम=कच्चा; राज डगरो=राज मार्ग; पचि=थककर।

(२६) सुहृद=मित्र; सुसेव्य=भली भाँति सेवा करने योग्य; पुंजी=धन।

(२७) अनुसरियें=अनुसरण करते हैं।

(२८) बेगारी=बेगार; सरल=सड़ा हुआ; तिकोन=तीन कोने का—सतरज, तम से निर्मित; खटोला=छोटी खाट, पाउँ बटोरें=पैर संभाल कर; मंद=नीचा; विलंद=(बुलंद) ऊँचा; अभेरा=धक्का; दलकन=झटका; कुराय=कुरैया, एक काँटेदार झाड़; लपेटन=लिपट जाने वाली एक घास; लोटन=पृथ्वी को ढँक कर फैलने वाली घास; संबल=मार्ग का व्यय।

(२९) दसबदन=दशानन, रावण; रीते=खाली हाथ।

(३०) सुरतरु=कल्पतरु; निसेष=संपूर्ण; ,कर अनुसरु=हाथ लगा।

(३१) सरदभव=शरद ऋतु में उत्पन्न; लच्छि=(लक्ष्मी); गंग जनक=गंगा जिनसे उत्पन्न हुई ह; अनंग अरि=शिव; बटु=ब्रह्मचारी; बिप्रतिय=

अहल्या; नृग वधिक के दुखदोष दारुन दरन=कृष्णावतार में राजा नृग का गिरगिट की योनि से उद्धार किया था, तथा उस निषाद के अपराधों को क्षमा किया जिसके वाण उन्हें लगे थे; नृग एक राजा थे जिन्होंने ब्राह्मणों को दान में बहुत सी गायें दीं, इन्हीं से एक उनकी गायों में आ मिलीं; उसी के कारण नृग को गिरगिट बनना पड़ा। तारन तरन=तारने वालों को भी तारने वाला।

(३२) बिगोयो=बिगाड़ा, बहँकाया; सहज सुख=आत्म सुख; बिलोयो=मथा; निचायो=निचोड़ा।

(३३) बिसेषि=विशेषता बताकर; अलग करके; कोई रेख दूसरी खाँचो =कोई अन्य रेखा खींचो अर्थात् अन्य मत दो; जोग=संयोग; टाँचन टाँचो= संबंधों के जुड़े हुए हैं; सही करना=स्वीकार करना, (पाँचो=पंचों से)।

(३४) खीन=क्षीण; गति-बिहीन=असमर्थ, निराश्रित; नतपाल= प्रणतपाल; शरण में आए हुओं का पालन करने वाले।

(३५) गरीबनिवाज=दीनदयालु; बाँह गही है=बाँह पकड़ ली है, अर्थात् शरण में ले लिया है।

दोहावली

(३) कानि=मर्यादा, प्रेम की मर्यादा।
(६) परुष=कठोर; पयद=बादल।
(७) उपल=पत्थर, ओला।
(८) झरी=झड़ी, वर्षा की झड़ी; राग=प्रेम।
(९) घूंटक=एक घूंट।

(२२) जग कह चातक पातकी=संसार चातक को पातकी कहता है— इसलिए कि वह गंगादि के पवित्र जल का भी निरादर करता है।

(२३) जीवन दानि=जलद, बादल।
(२५) चरग=बाज।
(२६) पुन्य जल=गंगा के जल।
(२७) चेटुवा=बच्चा; तुष=अंडे का छिलका।
(२९) नारी=गर्दन।
(३३) आलवाल=थाला; मुकुताहल=मोती।



सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग